इकाई 1 भाषा और संप्रेषण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संप्रेषण क्या है?
1.3 संप्रेषण का स्वरूप
1.4 संप्रेषण साधना
1.5 संप्रेषण का तकनीकी पक्ष
1.6 संप्रेषण का सामाजिक परिप्रेक्ष्य
1.7 संप्रेषण के बढ़ते चरण
    1.7.1 सूचना समाज (The information Society)
    1.7.2 संचार (Communication)
    1.7.3 संप्रेषण और संचार में अंतःसंबंध
1.8 भाषा शिक्षण में संप्रेषण का उपागम
1.9 सारांश
1.10 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

अर्थ संप्रेषण का सबसे प्रमुख कार्य है। सवाल यह है कि 'अर्थ' क्या है? संप्रेषण/संचार (communication) नामक विषय क्षेत्र भाषा को संप्रेषण/संचार के साधन के रूप में देखता है और जीवन के विविध संदर्भों में मानव व्यवहार के रूप में व्यक्त संदेश को, संप्रेषित वस्तु के रूप में परिभाषित करता है। इस अर्थ में संदेश का संदर्भ भाषा के अर्थ (शब्दार्थ या वाक्यार्थ) से अधिक व्यापक है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संप्रेषण का तात्पर्य समझा सकेंगे,
- सामाजिक/सांस्कृतिक संदर्भ में संप्रेषण का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे,
- संप्रेषण और संचार का अंतःसंबंध समझा सकेंगे,
- विकसित समाज में संप्रेषण के महत्व की चर्चा कर सकेंगे,
- आधुनिक सूचना समाज में संचार और संप्रेषण के स्थान की व्याख्या कर सकेंगे, और
- संचार और संप्रेषण के क्षेत्र में आगे की संभावनाओं की प्राक्कल्पना कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भाषा का एक आंतरिक पक्ष है। भाषा एक रचना है। भाषा की व्याकरणिक रचना मन के जटिल भावों को एक-दूसरे पर प्रकट करने में सहायक है। इस दृष्टि से विचारों की अभिव्यक्ति यानी संप्रेषण की प्रक्रिया में भाषा की संरचना साधन का काम करती है।

भाषा का एक बाह्य पक्ष है। भाषा का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ ही भाषा के संप्रेषण का प्रयोजन है। यह भाषा का अर्थ पक्ष है। अर्थ के संदर्भ में हम सूचनाओं के आदान-प्रदान में योगदान करते हैं। जनसंचार तथा दूर संचार के माध्यम से व्यापक संप्रेषण संभव हो पाया था। अब वह युग आ गया है जब संचार और संगणन (Computing) एक साथ मिलेंगे और संप्रेषण को सुदृढ़ बनाएँगे।

भाषाविज्ञान संबंधी पाठ्यक्रम में हम विषय प्रवर्तन के रूप में संप्रेषण की चर्चा से कर रहे हैं। इसका एक कारण है। भाषा के बारे में लोग यही सोचते थे कि भाषा एक व्याकरणबद्ध व्यवस्था है और दो लोगों के बीच विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। लेकिन धीरे-धीरे भाषा की संकल्पना और भाषा के बारे में अध्ययन की दृष्टि में विस्तार होता गया। जहाँ पहले लोग बोलियों को भाषा का विकृत तथा तिरस्कृत रूप मानते थे, आज हम समाजभाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा के विविध रूपों की जीवंतता की चर्चा करते हैं। भाषा पूरे समाज के विविध संदर्भों में संप्रेषण का माध्यम है।

इसी तरह भाषा अध्ययन के विविध संदर्भों में दृष्टि परिवर्तन दिखाई देता है। प्रैग्मैटिक्स नामक भाषाविज्ञान की नई शाखा में हम कोशीय अर्थ से हटकर भाषा व्यहवार मे निहित संप्रेषण को समझने का यत्न करते हैं। इस नई दृष्टि का प्रभाव अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के विविध क्षेत्रों पर भी पड़ा है। भाषा शिक्षण अब मात्र संरचनाओं को कंठस्थ कराने का यत्न नहीं करता, बल्कि संप्रेषण के स्तर पर भाषिक क्षमता के विकास करने का यत्न करता है। इस परिप्रेक्ष्य में संप्रेषण से चर्चा शुरू करना भाषाविज्ञान की अधुनातन प्रवृत्ति को जानने का आधार बन सकता है।

भाषा के कार्य को केवल शब्दार्थ या वाक्यार्थ तक सीमित नहीं कर सकते। संप्रेषण का दायरा भाषिक अर्थ से ही ज्यादा विस्तृत है। हमारी संस्कृति, साहित्य और वाङ्मय, आचार-विचार सभी संप्रेषण की प्रक्रिया से ही संभव हैं, सुरक्षित हैं।

मानव की भाषा प्रारंभ में संभवतः सिर्फ़ आवश्यकताओं की पूर्ति के संप्रेषण मात्र का साधन थी। भाषा के इस्तेमाल के पिछले कुछ सहस्राब्दियों में मानव ने संप्रेषण के इस साधन को माँजकर संपन्न बनाया है और संप्रेषण के विविध संदर्भों और रूपों का विकास किया है। इस दीर्घकालीन परंपरा के कारण हमारे पास ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य के विविध कोष उपलब्ध हैं। इसी को हम व्यापक अर्थ में सांस्कृतिक संप्रेषण की संज्ञा दे सकते हैं। लेखन के आविष्कार से भाषिक संप्रेषण को स्थायित्व मिला। आज भी हम शिक्षा के माध्यम से संप्रेषण को सुदृढ़ करने का यत्न कर रहे हैं।

मनुष्य का प्रारंभिक संप्रेषण व्यक्तिशः होता था। प्रायः दो लोगों की बातचीत, सामूहिक चर्चा तथा यदा-कदा अपने वर्ग को संबोधित करना संप्रेषण के रूप थे। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी के विकास के कारण संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति आई। संचार के साधनों ने संप्रेषण का स्वरूप ही बदल दिया है। अब हम व्यक्तिशः संप्रेषण से हटकर जनसंचार (mass communication) के युग में पहुँचे हैं। जनसंचार वास्तव में जनता के व्यापक संप्रेषण का ही दूसरा नाम है। इस तरह संचार और संप्रेषण दोनों एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह जुड़े हैं। शायद यही कारण है कि अंग्रेज़ी में दोनों के लिए एक ही शब्द है।

वर्तमान युग में कंप्यूटरों ने सूचना समाज के निर्माण में योगदान किया है। कंप्यूटर सूचनाओं का त्वरित गति से संसाधन ही नहीं करते, बल्कि इंटरनेट तथा नेटवर्क के जरिए संप्रेषण का संदेश इसी लक्ष्य की पूर्ति में व्यक्त होता है।

1.2 संप्रेषण क्या है?

संप्रेषण एक परस्पर क्रिया है, जिसमें एक पक्ष संदेश का संप्रेषण करता है, दूसरा पक्ष उस संदेश को ग्रहण करता है। संप्रेषण हर जीवित प्राणी का गुणधर्म है। चींटियाँ गंध द्वारा अपने समाज के अन्य प्राणियों को शिकार या खाद्यपदार्थ या शत्रु का संदेश देती हैं। मधुमक्खियाँ अपने साथियों को 'नाच' द्वारा संदेश संप्रेषित करती हैं। घोड़ा, कुत्ता आदि जानवर ध्वनियों

के माध्यम से संप्रेषण करते हैं। लेकिन इनका संप्रेषण कथ्य, परिवेश तथा काल की दृष्टि से अति सीमित हैं। इनके मुकाबले मनुष्य की भाषा बसे उन्नत और जटिल संप्रेषण व्यवस्था है, जो काल, परिवेश की सीमाओं के बाहर जटिल से जटिल विषयों के प्रतिपादन में सक्षम है। भाषा की वस्तु के संदर्भ में हम भाषा के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष के प्रकरण में विचार करेंगे और उसकी जटिलता के बारे में उसके रचना पक्ष की चर्चा में व्याख्या करेंगे।

मानवों के संप्रेषण के संदर्भ में भी दो पहलू हैं। मनुष्य दो प्रकार से संप्रेषण करता है। भाषिक संप्रेषण में हम उच्चरित या लिखित भाषा के माध्यम से संप्रेषण करते हैं। भाषा-इतर संप्रेषण में मनुष्य इंगित द्वारा, हाव-भाव के माध्यम से अपने विचार संप्रेषित करते हैं। संप्रेषण के ये दोनों माध्यम परिपूरक भी हो सकते हैं, याने व्यक्ति दोनों का एक साथ भी उपयोग कर सकता है।

मानवों के संप्रेषण का एक अन्य आयाम स्थानापन्न संप्रेषण है। मूक-बधिर व्यक्तियों की संकेत भाषा (sign language), व्यापारी आदि की गुप्त भाषा (secret language) आदि वास्तव में मानव की उच्चरित या लिखित भाषा के प्रतिरूप हैं।

इस चर्चा के संदर्भ में कह सकते हैं कि उन्नत संप्रेषण व्यवस्था का सबसे अच्छा उदाहरण मानवों की भाषा है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि भाषा संप्रेषण का सबसे अच्छा माध्यम है। भाषा की परिभाषा देते हुए कहा जाता है कि भाषा विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। यानी भाषा के इस्तेमाल में वक्ता और श्रोता (या लेखक और पाठक) ये दो पक्ष अनिवार्य हैं। भले ही हम अपने मन में (अपने आपसे) बातचीत कर लें, भाषा के व्यहवार के लिए दो पक्ष चाहिए ही। परस्पर व्यवहार में दोनों व्यक्ति क्रम से एक दूसरे को किसी व्यवहार के लिए प्रेरित करते हैं। यानी वाक् व्यापार परस्पर व्यवहार का आधार बनता है। अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन ही भाषिक संप्रेषण का लक्ष्य है। संप्रेषण का संदेश इसी लक्ष्य की पूर्ति में व्यक्त होता है। इस तरह परस्पर व्यहवार के लिए संदेश के उचित संप्रेषण की अनिवार्यता है। इस परस्पर भाषिक व्यवहार का माध्यम जो भी हो (पत्र लेखन, रेडियो प्रसारण, टेलीफ़ोन पर बातचीत) या उसका स्वरूप जो भी हो (लेखन, बातचीत, संकेत, हाव-भाव), कुल मिलाकर संदेश संप्रेषण ही हमारा प्रमुख ध्येय है। इस तरह संप्रेषण का केंद्र बिंदु संदेश है।

1.3 संप्रेषण का स्वरूप

संप्रेषण की प्रक्रिया को समझने के कई ढंग हैं। फ्रेड़ेरिक विलियम्स (1984 : पृ. 24) कहते हैं कि निम्नलिखित पाँच दृष्टियों से हम संप्रेषण का अध्ययन कर सकते हैं :

(1) संप्रेषण व्यवस्था का सबसे प्रमुख उपभोक्ता मनुष्य है। इस संदर्भ में हम जान सकते हैं कि मानवों की संप्रेषण व्यवस्था यानी भाषा का स्वरूप क्या है, उससे हम क्या और कैसे संप्रेषण करते हैं। हम आपसी संबंध संप्रेषण से कैसे स्थापित करते हैं, हम भाषा के माध्यम से संप्रेषण का विस्तार कैसे करते हैं आदि। भाषाविज्ञान के विविध रूप इस अध्ययन क्षेत्र में आते हैं।

(2) हम संप्रेषण के सामाजिक संदर्भों की चर्चा कर सकते हैं जैसे व्यक्तिगत संप्रेषण (चिंतन), व्यक्तिशः संप्रेषण (वार्तालाप), समूह, संगठन तथा सार्वजनिक स्तर पर संप्रेषण।

(3) हम संप्रेषण के प्रकार्यों और प्रभाव की चर्चा कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यह शोध कर सकते हैं कि संप्रेषण किस हद तक मनोरंजन का साधन है, संप्रेषण

से हम जन मानव में व्यवहार परिवर्तन कैसे ला सकते हैं या उन्हें सामाजिक-राजनीतिक संदेश कैसे दे सकते हैं।

(4) संप्रेषण की वस्तु क्या है यह भी चर्चा का विषय है। संदेश संप्रेषण का केंद्र बिंदु है। हम यह देखना चाहेंगे कि संप्रेषण में संदेश का क्या स्थान है।

(5) हम संप्रेषण के व्यवहार की जीवंत प्रक्रिया का अध्ययन कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर बातचीत और रेडियो प्रसारण संप्रेषण की भिन्न स्थितियाँ हैं। स्रोत, माध्यम, संदेश, प्राप्तिकर्ता आदि दृष्टियों से इनमें अंतर होगा।

इस तरह जीवन में भाषा के उपयोग के सभी संदर्भ संप्रेषण के संदर्भ हैं। इस दृष्टि से भाषा और संप्रेषण की अभिन्नता परिलक्षित होती है। इस अभिन्नता का कारण दोनों के स्वरूप की विशेषता है। भाषा ध्वनि, लिपि आदि बाह्य तत्वों से निर्मित व्यवस्था है, जिसमें उन तत्वों का काम केवल भाषिक तत्वों को पहुँचाना है। भाषा की व्यवस्था वह चैनल है जो अर्थ का वहन करता है। भाषा द्वारा संप्रेषित अर्थ वह संदेश है जो वक्ता भाषा के माध्यम से दूसरों (श्रोताओं) तक पहुँचाता है। संप्रेषण में भी समान स्थिति है जिसे निम्नलिखित प्रकार से एक आरेख से दिखा सकते हैं :

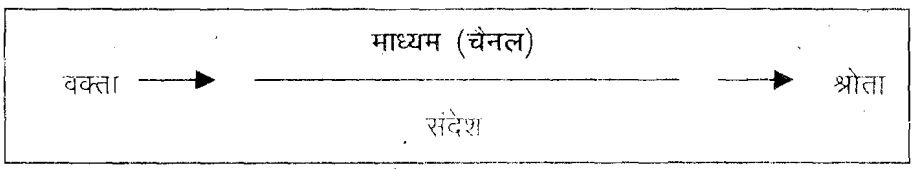

वक्ता और श्रोता संदेश संप्रेषण के लिए संप्रेषण भाषा का उपयोग करते हैं। संप्रेषण के इन आयामों की विशिष्ट चर्चा तीन विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों में होती है।

(i) संप्रेषण का एक **भाषिक पक्ष** है, जिसका अध्ययन भाषाविज्ञान के अंतर्गत होता है। भाषा के माध्यम से हम विचारों का आदान-प्रदान कैसे करते हैं, कैसे एक दूसरे को समझते हैं आदि इसके विषय क्षेत्र में आते हैं। अच्छा संप्रेषण वक्ता को अपने लक्ष्य की सिद्धि में मदद देता है। अगर आप किसी प्रयोजन वे किसी को पत्र लिखें, लेकिन अपना अभीष्ट अर्थ संप्रेषित न कर पाएँ, तो पत्र लिखने का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। खराब विज्ञापन बिक्री में बढ़ोतरी नहीं कर सकता, ठीक से तैयार न किया गया जीवन वृत्त नौकरी पाने में मदद नहीं कर सकता। इन सब स्थितियों में संप्रेषण का भाषिक पक्ष महत्वपूर्ण है। इस तथ्य से अवगत होने के कारण आजकल संस्थाओं और संगठनों में लोगों के लिए संप्रेषण के विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। विश्वविद्यालयों में प्रशासनिक संप्रेषण (office communication), व्यावसायिक संप्रेषण (business communication) आदि प्रयोजनमूलक पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

(ii) संप्रेषण का एक **भौतिक पक्ष** है, जिस अर्थ में हम हिंदी में 'संचार' शब्द का व्यवहार करते हैं। संचार चैनलों के माध्यम से होता है। अगर ये चैनल ठीक से काम न करें, तो संदेश सही ढंग से नहीं पहुँचेगा। इस विषय क्षेत्र में हम यह अध्ययन करते हैं कि संचार माध्यम कितने सक्षम हैं और संदेश वाहन में कहाँ तक कारगर हैं। दूसरी तरफ़ हम यह भी अध्ययन करते हैं कि विभिन्न प्रकार के संप्रेषणों के आयोजन में हम किस प्रकार के संचार माध्यम का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए टेलीकांफ्रेंसिंग आधुनिक युग में सामूहिक संप्रेषण का एक सशक्त संदर्भ है, जिसमें संसार के हर कोने के लोग भाग ले सकते हैं। यह संप्रेषण तभी संभव होगा, जब संदेश के प्रसारण के लिए उपग्रह संचार की सुविधा मिल जाए। संचार में प्रौद्योगिक विकास की स्थिति से हम संप्रेषण की क्षितिज रेखा बढ़ाते जा रहे हैं।

(iii) संप्रेषण का एक **सामाजिक पक्ष** है। यह भाषा के अर्थ पक्ष के समान है। हम संप्रेषण के माध्यम से क्या संदेश देते हैं? सबसे प्रमुख संदेश आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया संभाषण है। जैसे :

ग्राहक : साबुन है? दुकानदार : हाँ, है।
ग्राहक : एक दीजिए।

आवश्यकताओं की पूर्ति वाला यह संप्रेषण प्राणिमात्र की विशेषता है और रचना की दृष्टि से जटिल नहीं है। मनुष्य का भाषा के माध्यम से संप्रेषण इससे कहीं व्यापक है, अत्यंत जटिल है। हम भाषा के माध्यम से अपेक्षित व्यवहार ही नहीं व्यक्त करते, बल्कि श्रोता के साथ अपने संबंधों को भी प्रकट करते हैं। इस तरह 'चुप बैठ', 'ज़रा बैठ जाइए', 'विराजिए', 'तशरिफ़ रखिए' आदि प्रयोग मूलतः बैठने के व्यापार की अपेक्षा करते हैं, साथ में श्रोता की स्थिति, उसका वक्ता से संबंध आदि संदर्भों का भी संप्रेषण करते हैं।

संस्कृति मानवों की विशेषता है, जिसे मानव समुदाय पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाते हैं। इसको हम अगली पीढ़ी तक का सांस्कृतिक संप्रेषण कह सकते हैं। इस संप्रेषण में भाषा की लेखन परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिन संस्कृतियों में लेखन की व्यवस्था नहीं है, उनमें वाचिक परंपरा (oracy) ज्ञान के भंडार को सुरक्षित रखने और आगे बढ़ाने में योगदान करती है।

1.4 संप्रेषण साधना

संप्रेषण के बारे में हमने चर्चा की कि इसके दो प्रमुख पात्र हैं – वक्ता और श्रोता। जब तक दोनों में संदेश के आदान-प्रदान की सक्रिय सहभागिता न हो, सफल संप्रेषण नहीं हो सकता। इसके भी दो पहलू हैं जो सफल संप्रेषण में सहयोगी हैं।

सफल संप्रेषण का एक आधार भाषाई दक्षता है। वक्ता को संदर्भ के अनुसार उचित भाषा का उपयोग करना चाहिए। विचारों का तार्किक क्रम, वक्ता के कथन के संदर्भ में सही प्रतिक्रिया, अपने वक्तव्य के संदर्भ में अपने मनोभावों को यथोचित ढंग से व्यक्त करने के लिए सही शब्दावली और उपयुक्त भाव-भंगिमा का प्रदर्शन, वक्तव्य की स्पष्टता आदि विशेषताएँ संप्रेषण को प्रभावपूर्ण बनाती हैं। इसी को हम वक्तृत्व क्षमता की संज्ञा देते हैं।

संप्रेषण का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है कि हम जानें कि संदेश अभिप्रेत या अभीष्ट रूप में श्रोता तक पहुँच गया है या नहीं। आपने अनुभव किया होगा कि कभी आप गंभीरता से कोई बात कहते हैं और श्रोता समझता है कि आपने मज़ाक किया है। अक्सर आपने लोगों को यह कहते सुना होगा – "भई, मैं तो मज़ाक कर रहा था, आप तो ख़ाम ख़ाह नाराज़ हो गए।" इन स्थितियों में दोनों को संप्रेषण के चैनल को साधना होता है। इसके लिए दोनों अक्सर संप्रेषण के तार जोड़ने का यत्न करते हैं जिसे निम्नलिखित कथनों/उक्तियों से समझा जा सकता है। "मेरी बात समझ गये न?", "मेरा कहने का मतलब है....", "अगर दूसरे शब्दों में कहूँ...."। इन उक्तियों से समझ सकते हैं कि वक्ता और श्रोता दोनों संवाद की स्थिति में आश्वस्त होना/करना चाहते हैं कि संदेश ठीक से पहुँच रहा है या नहीं। संप्रेषण की विविध विधाओं में हम संप्रेषण की कुशलता या संप्रेषणीयता को सुनिश्चित करने के लिए विविध युक्तियों का उपयोग करते हैं। **भाषण** में वक्ता किन्हीं बातों पर बल देते हुए स्वर ऊँचा करते हैं जिससे मालूम हो सके कि वह महत्वपूर्ण बात है, श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं 'समझ रहे हैं', 'आप तो जानते ही हैं' आदि, अपनी बातें दुहराते हैं तथा दुहराव की सूचना भी देते हुए कहते हैं – "मैं फिर यह बात दुहराना चाहता हूँ।"

लेखन में शीर्षक देना, शब्दों को रेखांकित करना आदि भौतिक युक्तियों के साथ कथनों के माध्यम से भी संप्रेषणीयता सुनिश्चित किया जाता है। 'संक्षेप में....', 'दूसरे शब्दों में ....', 'उल्लेखनीय है.....', 'खास बात यह है .....' आदि उक्तियाँ संदेश को संप्रेषणीय बनाने के उद्देश्य से व्यवहार में लायी जाती हैं। संवाद में इस तरह की उक्तियाँ हैं – 'मैं जो कह रहा हूँ उसे ज़रा ध्यान से सुनिए', 'शायद आपका कहने का मतलब यह है...', 'मैं यह तो नहीं कह रहा था....'

1.5 संप्रेषण का तकनीकी पक्ष

संप्रेषण को समझने के लिए 'कोड' (code) शब्द को समझना आवश्यक होगा। आप सब तार के लिए व्यवहृत मोर्स कोर्ड से परिचित ही हैं। इसमें अंग्रेज़ी के अक्षरों के लिए ध्वनि संकेतों (signals) का प्रयोग कर मोर्स के चिह्न (sign) निर्मित किए जाते हैं। अंग्रेज़ी वर्तनी को चिह्नों में बदलने की प्रक्रिया को हम कोडबद्ध करना (encoding) कहते हैं और प्राप्त ध्वनियों से मूल शब्द शब्दों को पहचानने की क्रिया कोड खोलना (decoding) कहलाती है। भाषा के मुकाबले 'कोड' शब्द का प्रयोग इसी कारण सार्थक है कि हम इस कोड का प्रयोग किसी भी भाषा के लिए कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम निश्चित करें कि संदेश को किन नियमों से कोडों में बाँधें। अगर व्यक्ति उन नियमों से अपरिचित हो,तो वह संदेश तक नहीं पहुँच सकता। इस दृष्टि से भाषा भी एक कोड व्यवस्था है। हम यह निश्चित करते हैं कि उच्चरित ध्वनियों से बने प्रतीकों (शब्दों) को किन व्याकरणिक नियमों से संदेश के संप्रेषण के लिए कोड व्यवस्था का रूप देते हैं।

भाषा बोलते समय हमारे मन में विचार हैं, जो संप्रेषणीय संदेश हैं।। इन्हें हम किन्हीं नियमों के अधीन भाषिक उक्तियों रूप में व्यक्त करते हैं। यह कोडबद्ध करने की प्रक्रिया है। सुनने वाला कोड की व्यवस्था को उन्हीं नियमों के अधीन खोलता है और संदेश तक पहुँचता है। इस तरह वक्ता और श्रोता दोनों कोड के संसाधन (processing) द्वारा संदेश देने और लेने की प्रक्रिया (यानी संप्रेषण) से गुज़रते हैं। उसी तरह जैसे तार बाबू कोड पहचानकर संदेश (यानी तार का पाठ) लिख लेता है। अंतर यही है कि तार का संदेश बहुत सरल रचना है, भाषा के स्वाभाविक संप्रेषण की रचना बहुत जटिल है, जिसकी चर्चा आगे करेंगे। संप्रेषण की स्थिति में कोड में व्यवधान (noise) भी आता है जो संदेश को समझने में बाधा पहुँचाता है। व्यवधान का एक सरल, समझ में आने वाला उदाहरण है वर्तनी का दोष। कभी एक गलती भी हो तो संदेश को समझने में कुछ कठिनाई होती है। अगर हमें संदेश का पूर्वानुमान हो, तो हम अंदाज़ से संदेश को समझ लेते हैं। यह भी संप्रेषण के संसाधन की एक प्रक्रिया है। अगर एक वाक्य में कई गलतियाँ हों, तो संदेश (अर्थ) को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। भाषा में लगभग हर स्तर पर ऐसे व्यवधान की संभावना रहती है, जैसे उच्चारण, वाक्य विन्यास, शब्द प्रयोग, शैली आदि। व्यक्ति जब तक भाषा का सही प्रयोग न करे,तो भाषा के माध्यम से संप्रेषण सफल नहीं होता। इसलिए भाषा शिक्षणविद् भाषा के सहज संप्रेषण पर बल देते हैं।

संप्रेषण की दृष्टि से व्यवधान (noise) दो तरह के हैं। एक व्यवधान को हम भौतिक अर्थ में 'शेर' ही कह सकते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर दो व्यक्ति भरे बाज़ार में खड़े हों और बात कर रहे हों तो उन्हें एक दूसरे को समझने में कठिनाई हो सकती है, क्योंकि चारों तरफ़ शोरगुल का वातावरण है। हालांकि उनके कोड में कोई दोष नहीं है। इस तरह के व्यवधान को हम माध्यम का व्यवधान (Channel noise) कहते हैं। भाषा के संदर्भ में हमें अक्सर माध्यम व्यवधान के बीच में से अर्थ ग्रहण करना पड़ता है। ऐसे उदाहरण हैं शोर वाला रेडियो कार्यक्रम, भीड़भाड़ में बातचीत, टेलीफ़ोन पर बातचीत जहाँ आवाज़ स्पष्ट नहीं है, जहाँ चार-पाँच लोग एक साथ बोल रहे हो, या जब व्यक्ति बीमारी या खुमारी की वजह

से ठीक से बोल न पा रहा हो। इन सब स्थितियों में भाषा को समझने का अभ्यास भी भाषा अध्ययन का अंग होना चाहिए। दूसरी स्थिति वर्तनी दोष, वाक्य संरचना दोष आदि हैं जो कोड को भी प्रभावित करते हैं। इन्हें हम कोड का व्यवधान (code noise) कहते हैं। संप्रेषण से जुड़े हुए व्यक्तियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि वे माध्यम के व्यवधान में भी किस तरह संदेश पहुँचा या प्राप्त कर सकते हैं। प्रभावी संप्रेषण के लिए यह भी आवश्यक है कि हम संप्रेषण में कोड के व्यवधान (या भाषा दोषों) का परित्याग करें जिससे संदेश विकृत न हो।

1.6 संप्रेषण का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

आमतौर पर यह कहा जाता है कि जनजातियों की भाषाएँ अविकसित होती हैं। यह भी माना जाता है कि उनकी भाषा का कोई व्याकरण नहीं होता। यह भ्रमपूर्ण कथन है हम संप्रेषण संदर्भ में जानते हैं कि हर भाषा या बोली अपने में स्वायत्त स्वयंपूर्ण व्यवस्था होती है। यह भी हम जानते हैं कि भाषा एक कोड है और उसके संकोडीकरण और विकोडीकरण में निश्चित व्यवस्था होती है। अगर कोड नियमबद्ध न हो तो किसी भी भाषा में संप्रेषण संभव नहीं हो सकता है। विकसित भाषा में और जनजातियों की (अविकसित) भाषाओं में अंतर व्याकरणिक व्यवस्था के कारण नहीं है बल्कि संप्रेषण के अन्य साधनों के कारण है।

विकसित भाषाओं में हम भाषा के परिमार्जन की योजना बनाते हैं और भाषा में काम करने के लिए सहायक संदर्भ ग्रंथ और साधन जुटाते हैं। समाज भाषावैज्ञानिक इस प्रक्रिया को कोड विस्तार की संज्ञा देते हैं। कोड विस्तार की संज्ञा पर विविध विषयों में भाषा में काम करने के लिए पारिभाषिक शब्द बनते हैं और अभिव्यक्तियों का भंडार एकत्र होता है। इन्हीं सहायक सामग्रियों को हम शब्दकोष, व्याकरण आदि संदर्भ ग्रंथों के रूप में उपलब्ध कराते हैं। यू कह सकते हैं कि विकसित और मौखिक भाषाओं के अंतर कोड व्यवस्था के कारण नहीं है बल्कि कोड विस्तार की प्रक्रिया के कारण है। यह बात सही है कि लिखित भाषाओं में लेखन की दीर्घकालीन परंपरा के कारण कोड विस्तार संभव हो पाता है जबकि भाषा की भाषिक परंपरा में कोड विस्तार नहीं हो पाता। इस दृष्टि से ये भी सही है कि जिन भाषाओं को हम अविकसित कहते हैं उनमें विविध विषयों में काम करने की क्षमता कम होती है। संक्षेप में, जनजातियों की भाषाएँ उनकी अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम हैं लेकिन व्यापक वैशविक ज्ञार्नाजन के लिए उनकी क्षमता कम है।

यह भी अक्सर कहा जाता है कि जनजातियों की संस्कृतियाँ मुख्यधारा से हटी हुई हैं। लेकिन यह भ्रमपूर्ण कथन भी सुनने में आता है कि जनजातियों की संस्कृतियाँ दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं। जिस तरह से कोई मानव समाज भाषाविहीन नहीं हो सकता उसी तरह कोई मानव समाज संस्कृतिविहीन नहीं हो सकता। अंतर अगर है तो, संस्कृति के स्वरूप के सवाल के कारण। आदिम संस्कृतियाँ व्यक्तियों के व्यवहार के नियंत्रक-नियोजक के रूप में काम करती हैं। लेकिन ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में अनभिज्ञ होने के कारण यह संभव है कि उनकी कुछ मान्यताएँ या विचार तर्कसंगत न हों। लेकिन इससे किसी संस्कृति को अविकसित नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक ज्ञान-विज्ञान के व्यवहार का सवाल हैं आदिम संस्कृतियों में भी कुछ ऐसी ज्ञान राशियाँ हैं जो तथाकथित वैज्ञानिक समाज के पास भी नहीं हैं। लेकिन विकसित और अविकसित समाजों में सांस्कृतिक स्वरूप के अंतर का क्या कारण है? जिस तरह भाषा के क्षेत्र में लेखन की व्यवस्था के कारण ज्ञानराशि जुड़ती गई उसी तरह सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित समाज में ज्ञान का भंडार जुड़ता गया है। यह ज्ञानराशि (Body of Knowledge) विकसित भाषाओं का प्रमुख अभिलक्षण है। धर्म दर्शन के ग्रंथ, हजारों वर्षों से संचित साहित्यिक कृतियाँ, चिकित्साविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विविध अध्ययन क्षेत्रों में उपलब्ध वाड्.मय हर विकसित समाज में सांस्कृतिक धरोहर हैं। इस ज्ञानराशि की उपलब्धि में उस संस्कृति के लिखित संप्रेषण का बहुत बड़ा योगदान है। दूसरे

शब्दों में कह सकते हैं कि विकसित भाषाओं में कोड विस्तार और ज्ञान विस्तार साथ-साथ चलते हैं जबकि कम विकसित समाजों में कोड और वांड्.मय का प्रभाव क्षेत्र सीमित होता है। इस दृष्टि से संप्रेषण विशेषकर लिखित संप्रेषण, समाज और संस्कृति के विकास के प्रमुख कारक तत्व हैं।

1.7 संप्रेषण के बढ़ते चरण

प्रारंभिक युगों में संप्रेषण व्यक्तिगत संपर्क का दूसरा नाम था। मानव संस्कृति के विकास के साथ संप्रेषण में व्यापकता आती गई। लेखन के कारण लोगों के विचार काल और समय से परे संप्रेषित हो सके। आधुनिक युग में संचार साधनों के विकास के कारण संप्रेषण ने संचार का रूप धारण किया और संप्रेषण सामूहिक सहभागिता के संदर्भ में जन संचार के रूप में व्यवहार में आया। आज कंप्यूटरों के कारण संप्रेषण में अभूतपूर्व क्रांति आयी है। चूँकि हम संचार साधनों के माध्यम से व्यापक स्तर पर संप्रेषण करते हैं, हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि हम सही ढंग से संदेश संप्रेषित करें।

1.7.1 सूचना समाज (The information society)

सभ्यता के आरंभ से अब तक के मनुष्य के इतिहास का वर्णन करते हुए उसे तीन विशिष्ट युगों में बाँटा जाता है। सबसे पहला युग था कृषि प्रधान समाज का। उसके बाद युग था औद्योगिक विकास के समाज का। आज के युग में सूचना समाज की प्रधानता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूचना ने कृषि या उद्योगों को स्थानापन्न कर दिया हो। कृषि प्रधान समाज में सारे लोग कृषि पर आधारित थे। औद्योगिक विकास के युग में कृषि का विकास और विस्तार हुआ, फिर भी समाज के कुछ ही लोग कृषि कार्यों में लीन थे। शेष उद्योगों की स्थापना करने लगे। इसी तरह सूचना युग में सूचना प्रौद्योगिकी के कारण कृषि और उद्योगों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, लेकिन इनमें पहले के मुकाबले में कम लोग लगे हैं, शेष सूचना प्रौद्योगिकी को समुन्नत करने में लगे हैं।

जिस समाज में सूचना और संचार का महत्व अधिक हो, वहाँ कृषि कैसे उन्नत हो सकती है? संचार के कारण अब लोगों के पास कृषि के तरीकों के बारे में अच्छी जानकारी है। इसलिए वे कम समय में अच्छे तरीके से अपना काम कर पाते हैं। एक मिलता-जुलता उदाहरण लीजिए। कृषि प्रधान समाज में एक एकड़ ज़मीन को जोतने में कई व्यक्ति, हफ़्तों लगकर काम करते थे। औद्योगिक विकास के कारण अब यह काम एक व्यक्ति ट्रैक्टर की सहायता से एक दिन में करता है। इस तरह नये साधन और नयी जानकारी लोगों के काम को आसान बना देते हैं। आज सूचना संचार 'ज्ञान का उद्योग' (knowledge industry) कहलाता है, जो अन्य उद्योगों से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इस सूचना समाज के क्रांतिकारी आविर्भाव में दो प्रमुख कारक तत्व हैं। एक, कंप्यूटर, जो सूचनाओं के कच्चे माल को ग्रहण करता है और संसाधित कर उसे उपभोक्ताओं लायक 'ज्ञान' में बदलकर प्रस्तुत करता है। दूसरे, उपग्रह संचार आदि संचार के उन्नत तरीके, जो उस ज्ञान को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाते हैं।

अब हम संप्रेषण के माध्यमों के संदर्भ में संचार के विविध रूपों की चर्चा करेंगे और देखेंगे कि आने वाले युग में भाषा के क्षेत्र में संचार के कितने नए आयाम खुलते हैं और भाषा के अध्ययन में रत व्यक्तियों के लिए कितने नये कार्य क्षेत्र खुलते हैं।

संचार के युग में व्यवहृत नई तकनीकों और सुविधाओं से आप अपरिचित नहीं हैं। आज हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति कंप्यूटर के कार्यों और इंटरनेट की संभावनाओं से अपरिचित नहीं हैं। इसी तरह दूर संचार में भी अभूतपूर्व क्रांति हुई है और लोग अपनी जेब में मोबाइल फ़ोन

लेकर चलते हैं, मानो वे अपना टेलीफ़ोन एक्सचेंज अपने साथ लेकर चल रहे हों। लोगों के साथ संप्रेषण के दूसरे छोर पर जो लोग हैं वे अपने पाठकों और श्रोताओं तक हर पल पहुँचने में सफल हुए हैं। टी.वी. पर विज्ञापन, इंटरनेट पर विज्ञापन, मोबाइल पर खबरें, 24 घंटे के समाचार चैनल, वीडियो टेक्स्ट आदि आक्रामक रूप से श्रोताओं तक पहुँचते हैं। वाणिज्य-व्यापार, प्रशासन/प्रबंध, शिक्षा आदि कई क्षेत्रों में इस संचार क्रांति के दूरगामी परिणाम परिलक्षित हो रहे हैं। हम आगे कुछ प्रमुख क्रांतिकारी प्रयत्नों की चर्चा करेंगे।

1.7.2 संचार (Communications)

To Communicate का तात्पर्य है संदेश देना। इस अर्थ में व्यक्तिगत वार्तालाप संप्रेषण का एक प्रमुख रूप है, क्योंकि इसमें हम एक-दूसरे के साथ संदेशों का आदान-प्रदान करते हैं। क्षेत्र का विस्तार करते हुए हम रेडियो, अखबार आदि के माध्यम से भी संदेश संप्रेषित करते हैं। अखबार आदि के माध्यम से भी संदेश संप्रेषित करते हैं। माध्यम के महत्व के कारण इस तरह के संप्रेषण को संचार कहा जाता है। रेडियो, टेलीफ़ोन आदि संचार के साधन हैं। इस प्रकार अंग्रेज़ी शब्द Communication के लिए हिंदी में दो शब्द हैं संप्रेषण और संचार। संदेश देने के अर्थ में संप्रेषण व्यापक शब्द है। संप्रेषण की कुछ विशिष्ट स्थितियों को संचार की संज्ञा दी जाती है। अखबार, टेलीविजन आदि संचार के माध्यम भी संदेश संप्रेषित करते हैं।

दूर संचार (Tele-Communications)

व्यक्तिशः संप्रेषण की स्थिति के अंतिरिक्त हम टेलीफ़ोन आदि की सहायता से दूर तक संदेश संप्रेषित करें तो यह दूर संचार कहलाएगा। इस शब्द से संदेश की अपेक्षा चैनल का प्रकार्य प्रमुख है। टेलीफ़ोन, टेलेक्स, टेलीप्रिंटर आदि दूर संचार के साधन हैं। प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ यह बात जानना चाहते हैं कि किस तरह बिना व्यवधान के, सही ढंग से संदेश इन माध्यमों से संप्रेषित हो पाता है। अगर माध्यम ठीक से काम न करे तो, संदेश स्पष्ट नहीं होगा, यानी संप्रेषण सफल नहीं होगा। अतः संदेश की प्रकृति के अनुसार माध्यम को कारगर बनाना आज की प्रौद्यागिकी का लक्ष्य है।

जन संचार (Mass Communication)

व्यक्तिगत संप्रेषण में व्यक्ति संदेश देने के लिए एक व्यक्ति को या एक विशाल जन सभा को संबोधित कर सकता है। यह संप्रेषण क्षेत्र, समय तथा श्रोतागण की दृष्टि से सीमित है। हम लेखन के माध्यम से इन तीनों सीमाओं को लाँघ सकते हैं और माइक की सुविधा से लाखों की संख्या में लोगों को संबोधित कर सकते हैं। पुस्तक लेखन या लाउड स्पीकर से संबोधन दोनों व्यक्तिगत संप्रेषण ही कहलाएँगे।

इसकी तुलना में जन संचार एक अतिविकसित आधुनिक संप्रेषण व्यवस्था है, जिसमें संदेश प्रसारण करने वाला एक व्यक्ति नहीं, पूरा समाज है और संदेश प्रसारण पूरे समाज के लिए है। इस तरह यह सामाजिक संप्रेषण है, जो जन संचार के साधनों से ही संभव हो पाया है। रेडियो, टेलीविज़न, पत्रकारिता इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इनमें संदेश एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि अनेकों व्यक्तियों का समन्वित संप्रेषण है, जो सारी जनता के लिए है। माध्यम को महत्व देने के कारण इसे जन संचार कहा जाता है (जो mass communication का सहज अनुवाद लगता है), वास्तव में प्रयोजन की दृष्टि से यह जन संप्रेषण है।

संचार माध्यमों ने लेखन में कई नई विधाओं को जन्म दिया, जैसे रेडियो रूपक, रिपोर्ताज, परिचर्चा आदि। संचार साधनों के कारण टेलीकांफ्रेंसिंग, दूर संचार के साधनों का उपयोग करते हुए श्रोताओं के सक्रिय सहयोग से भेंट वार्ता आदि नये कार्यक्रम विकसित हुए। जन संचार की व्यापक पहुँच के कारण व्यापारिक/व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए विज्ञापन का विकास हुआ और जनतांत्रिक रूप से जनमत के संग्रह के शोधपरक आयाम खुले। इस

तरह जन संचार ने आधुनिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। इस अर्थ में भी सूचना समाज की संज्ञा सार्थक लगती है।

इस व्यापक पहुँच के कारण जन संचार लोगों की सोच, व्यवहार तथा कार्यविधि पर प्रभाव डालता है। अक्सर यह कहा जाता है कि यौन तथा हिंसा की घटनाओं से भरी फिल्मों के कारण बच्चों में नकारात्मक गुण पैदा हो जाते हैं। जन संचार के वैश्विक स्वरूप के कारण घटनाओं और विचारधाराओं का सारे विश्व पर प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्री यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि आगे के युग में सूचना संचार का विश्व पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

1.7.3 संप्रेषण और संचार में अंतःसंबंध

हम आधुनिक युग में समाज पर संचार के बढ़ते प्रभाव के संदर्भ में चर्चा करते हैं। अक्सर हम चर्चा सुनते हैं कि सिनेमा, टेलीविज़न जन संचार के माध्यमों के कारण युवाओं में सेक्स तथा हिंसा के प्रति रुझान होता जा रहा है। इसी तरह यह भी चर्चा सुनने में आती है कि भारतीय जनता पश्चिम के कार्यक्रमों के कारण भारतीय परंपरा और मूल्यों से विमुख होते जा रहे हैं। इस प्रकार की चर्चा का आधार क्या है?

सिनेमा, टेलीविज़न, पत्र-पत्रिकाएँ आदि केवल जन संचार के माध्यम हैं और समाज ही उनके संदेश का निर्धारण करता है। आजकल भारत में भक्ति, साधना, स्वास्थ्य संबंधी पत्रिकाओं का बढ़ता मार्केट है। इसकी तुलना में यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि पश्चिम के समाज ने संघर्ष करके यौन स्वच्छंदता की पत्रिकाओं के प्रकाशन की स्वतंत्रता हासिल की है। इस तरह हम संचार माध्यमों से किस संदेश का संप्रेषण कर रहे हैं या करना चाहते हैं यह समाज सापेक्ष है। इसका सीधा संबंध सामाजिक मूल्यों से है। मूल्यों की भिन्नता के कारण ही विदेशी कार्यकमों के अवांछित प्रभाव की बात कही जाती है। एक तरफ़ हम विदेशी कार्यक्रमों के प्रतिबंध, सेंसर द्वारा काट-छाँट आदि की बात सोच सकते हैं। दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि हम विदेशी संस्कृति को विदेशी ही मानकर ग्रहण करें और अपनी परंपराओं से नाता जोड़े रखें।

1.8 संप्रेषण का उपागम

भाषा शिक्षण के क्षेत्र में 40 के दशक से वाक्य संरचना पर आधारित उपागम (approaches) अपनाये गये। सामाजिक संदर्भ से कटे वाक्यों का अर्जन अधिक आकर्षक नहीं लगा। 60 के दशक में भाषा शिक्षणविदों ने प्रयोजनपरक भाषा शिक्षण का उपागम अपनाया। उस समय English for Specifial Purposes के नाम से वैज्ञानिकों के लिए अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम, वाणिज्य-व्यापार के लिए अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम आदि विशिष्ट प्रयोजनों वाले पाठ्यक्रमों का सिलसिला शुरू हुआ। इन दोनों ही उपागमों में भाषा की उपलब्धि का स्तर संतोषजनक नहीं था, क्योंकि अध्येता का ध्यान रचना या प्रयोजन पर केंद्रित हो जाता है और वे भाषा में सहज संप्रेषण नहीं कर पाते हैं। इसलिए 8वें दशक में संप्रेषणपरक भाषाशिक्षण का प्रवर्तन हुआ।

संप्रेषणपरक शिक्षण का उपागम यह मानकर चलता है कि भाषा मूलतः संप्रेषण की वस्तु है। इस कारण भाषा का उचित रूप से अर्जन तभी होता है जब संप्रेषण द्वारा सहज संप्रेषण के लिए भाषा सीखी जाए। सवाल यह उठता है कि संप्रेषण द्वारा सीखने का तात्पर्य क्या है? बेमेल वाक्य साँचे रटने में सार्थकता नहीं आती, क्योंकि संदर्भ से कटा कोई वाक्य बोध की परिधि में नहीं आता। संदर्भ में भाषा के संप्रेषण के कुछ प्रयोजन होते हैं। हम दुकान में *मोलभाव* के प्रयोजन से बातचीत करते हैं, अध्यापक छात्रों से सही व्यवहार *समझाने* के उद्देश्य से बात करते हैं। रेलगाड़ी में पास बैठे अपरिचित व्यक्ति से 'आज बड़ी गर्मी है' कहने का उद्देश्य है परिचय बढ़ाना, दोस्त से 'यह साड़ी कहाँ से ली?' पूछने का प्रयोजन

है तारीफ़ करना। ऐसे हर संप्रेषण की स्थिति का अपना एक गठन होता है। जैसे मोलभाव की स्थिति में 'दाम ज्यादा है', 'नहीं एक दाम है', 'कुछ कम करो', 'नहीं पूरा नहीं पड़ता ' आदि उक्तियाँ व्यवहृत होती हैं। भाषा शिक्षक यह कोशिश करता है कि ऐसे संप्रेषण की आवश्यक्ताओं (Communictive needs) को ध्यान में रखकर अध्यापक परिवेश का निर्माण करे और परिवेश के अनुरूप उक्तियाँ बोलने का अभ्यास कराए। इसी को हम संप्रेषणपरक भाषा शिक्षण कहते हैं। यह उपागम भाषा अर्जन में सहजता और स्वाभाविकता लाने की कोशिश करता है, जो हर संप्रेषण की स्थिति का सहज गुण है।

1.9 सारांश

भाषा संप्रेषण का साधन है अर्थात् दो व्यक्ति भाषा के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। जब व्यक्ति माइक का इस्तेमाल करता है, तो संप्रेषण का क्षेत्र बढ़ जाता है; जब व्यक्ति लेखन का उपयोग करता है, तो उसका पाठक वर्ग क्षेत्र और काल की दृष्टि से विस्तृत हो जाता है। इस तरह विज्ञान में उन्नति और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण संप्रेषण का विस्तार होता गया।

हम जिन माध्यमों से संप्रेषण करते हैं उन्हें संचार साधन कहते हैं और वह संप्रेषण भी आधुनिक संदर्भ में संचार कहा जाता है। यह रोचक तथ्य है कि अंग्रेज़ी में संप्रेषण, संचार दोनों के लिए एक ही शब्द है - Communication। हिंदी में भाषिक व्यापार संप्रेषण है, संप्रेषण के साधनों के संदर्भ में भौतिक संदेश संप्रेषण संचार है।

संप्रेषण के तीन पक्ष हैं – संप्रेषित करने वाला (वक्ता या लेखक), संदेश जो संप्रेषित किया जाता है और संदेश ग्रहण करने वाला (श्रोता या पाठक)। भाषा की दृष्टि से संदेश की संप्रेषणीयता का सवाल आता है। उस दृष्टि से भाषा एक कोड है, अर्थ की वाहिका है। अगर कोड त्रुटिपूर्ण हो तो संदेश संप्रेषित नहीं होगा। इस कारण शुद्ध उच्चारण, सही लेखन, उपयुक्त शब्दों का प्रयोग, व्याकरण सम्मत वाक्यों की रचना संप्रेषण के लिए आवश्यक है। यह संप्रेषण का भाषा वैज्ञानिक पक्ष है।

भाषिक संप्रेषण में दोनों पक्षों में परस्परता (interactivity) एक प्रमुख लक्षण है। इस कारण वक्ता और श्रोता (या लेखक और पाठक) यह सुनिश्चित करते हैं कि संदेश उचित ढंग से संप्रेषित हो रहा है या नहीं। संप्रेषण को साधना एक अनिवार्य कौशल है, जिसकी झलक संप्रेषण की स्थितियों में देखी जा सकती है। संप्रेषण के औपचारिक संदर्भ है जैसे पत्र लेखन, भाषण, साक्षात्कार, कार्यालय की बैठक आदि। उन संदर्भों में विचारों के संप्रेषण को औपचारिक रूप में निश्चित किया गया है। जैसे पत्र लेखन में संबोधन, विषय प्रवर्तन, स्वलेख, भेजने वाला का पता आदि लेखन को संदेश की दृष्टि से सुनिश्चितता प्रदान करते हैं। इस तरह विविध विधाओं की भाषा, शब्दावली, अभिव्यक्तियाँ आदि विधागत भाषिक अभिलक्षण हैं, जो संप्रेषणीयता सुनिश्चित करते हैं।

संचार का संदर्भ भौतिक साधनो से है। आधुनिक युग में दूर संचार, उपग्रह संचार, इंटरनेट आदि साधन विकसित हुए हैं, जिनसे संप्रेषण के नये आयाम खुले हैं। टेलीकांफ्रेंसिंग एक नया संप्रेषण है, जिसमें विश्व भर के विद्वान पूरी परस्परता के साथ विचार-विमर्श में भाग ले सकते हैं। यह भौतिक संप्रेषण के कारण ही संभव हुआ है।

जन संचार (mass communication) उधार-अनुवाद को प्रक्रिया से बना शब्द है। वास्तव में यह संप्रेषण का एक नया आयाम है जिसमें पूरा समाज संदेश देने और लेने का काम करता है। रेडियो, पत्रकारिता, टेलीविज़न आदि में परस्परता के अभाव में भी लोगों की

व्यापक प्रतिभागिता रहती है। वैसे संचार साधनों के विकास के कारण इनमें परस्परता भी बढ़ी है। जन संचार ने इस बदलती परिस्थिति में कई नई विधाओं को भी जन्म दिया है। जन संचार के साधन केवल सूचनाओं का ही प्रसारण नहीं करते, बलकि वैचारिक धरातल पर भी समाज दूसरे समाजों को अपने संदेश से प्रभावित कर सकते हैं। इसे लोग संस्कृति पर प्रभाव के रूप में देखते हैं और इसकी उपादेयता या अवांछनीयता के बारे चिंताशील है।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न
   - (1) संचार और संप्रेषण की संकल्पनाएँ स्पष्ट कीजिए।
   - (2) संप्रेषण के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
   - (3) संचार साधनों के संदर्भ में सूचना समाज की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

2. टिप्पणियाँ
   - (1) संचार और संप्रेषण का अंतःसंबंध
   - (2) संप्रेषण का सामाजिक पक्ष
   - (3) सूत्रता समाज
   - (4) भाषा शिक्षण में संप्रेषण का महत्व
   - (5) जनसंचार

इकाई 2 भारत में भाषा चिंतन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 वाक्
2.3 वाक्य
2.4 क्रिया की संकल्पना
  2.4.1 काल
  2.4.2 वाक्य प्रकार
  2.4.3 कारक
2.5 पद विचार
2.6 ध्वनि विवेचन
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास प्रश्न

2.0 उद्देश्य

भाषाविज्ञान आधुनिक युग की देन माना जाता है। लेकिन भाषा चिंतन भारत में वेदों की रचना के साथ-साथ शुरू हुआ, जहाँ वेदांगों में उच्चारण, शब्दार्थ, छंद आदि संबद्ध विषयों पर गहरी चर्चा हुई है। आधुनिक भाषाविज्ञान ने पाणिनि प्रभुति भारतीय मनीषियों के विचारों से प्रभाव ग्रहण किया है। इस समृद्ध परंपरा का ज्ञान आधुनिक भाषाविज्ञान को समझने में उपयोगी हो सकता है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वाक् की संकल्पना स्पष्ट कर सकेंगे,
- भाषा में ध्वनि, अर्थ तथा संरचना के संबंध में भारतीय दृष्टि की व्याख्या कर सकेंगे,
- वाक्य का केंद्र तत्व-क्रिया-का महत्व समझा सकेंगे, और
- आधुनिक भाषाविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषा चिंतन के महत्व की चर्चा कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

मानव प्रकृति से ही एक जिज्ञासाशील प्राणी है। यों तो मानवेतर प्राणी में भी कुतूहलता होती है, किंतु वह साक्षात् सामने उपस्थित भौतिक घटना के प्रति होती है और वह भी क्षणिक। पर मानव के समक्ष आरंभ से ही ये प्रश्न घुमड़-घुमड़ कर आते थे कि मैं कौन हूँ, यह नवजात शिशु कहाँ से आया है, मेरे दिवंगत पिताश्री कहाँ चले गए हैं, इस सृष्टि का सर्जनहार कौन है, आदि। ये 'कौन', 'कहाँ', 'कब' आदि की जिज्ञासाएँ फिर भी उतनी सार्थक नहीं थीं जितनी कि 'क्यों', 'कैसे' वाली जिज्ञासाएँ। पेड़ से सेब नीचे क्यों गिरा, आकाश में बादल क्यों उमड़ते हैं, सूर्य प्रकाश के साथ-साथ ऊष्मा क्यों देता है आदि प्रश्नों ने अनेकानेक वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं आविष्कारों को जन्म दिया। भाषा के प्रति भी इसी प्रकार की जिज्ञासा मानव के लिए सहज थी। इस सत्ता (वस्तु) को इस ध्वनि संयोजन से क्यों पुकारते हैं, इस ध्वनि संयोजन के सुनते ही क्यों इस सत्ता का बिम्ब मनःपटल पर खिंच जाता है, आदि कुछ चिंरतन प्रश्न आज भी मानव शिशु के मन को आलोड़ित करते हैं जिस तरह आदि मानव की संस्कृति के समय करते थे। इन्हीं यक्ष प्रश्नों से भाषा चिंतन का श्रीगणेश हुआ था।

ये भाषाई प्रश्न इस प्रकार नैसर्गिक तो हैं किंतु मातृभाषियों के लिए जो समाज में रहते हुए सहजतः भाषा कौशल प्राप्त करते हैं, ये कुतूहलता मात्र उत्पन्न करते हैं। ये चिंतन का विषय तब बनते हैं जब कोई भाषा कालतः, देशतः या संस्कृतितः उनसे दूरस्थ हो। ऐसी द्विभषिकतावत् स्थिति में अनेक प्राचीन सभ्यताओं में न्यूनाधिक भाषाचिंतन हुए थे। किंतु भारत में भाषाचिंतन के मूल में कोई बौद्धिक विलासिता नहीं थी बल्कि एक ठोस अनिवार्यता थी। भारतीयों के जीवन में वैदिक मंत्रों का व्यवहार एवं प्रयोग अपरिहार्यता रही है। यह हमारी संस्कृति ही है जहाँ मनुष्य के जन्म के पूर्व से उसके संस्कार आरंभ हो जाते हैं और निधन के पश्चात् अंत्येष्टि संस्कार और उसके बाद श्राद्ध, पितृतर्पण आदि अनेक संस्कार होते रहते हैं – और इन सब संस्कारों में वैदिक मंत्रों का ही प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त भारतीयों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष अर्थात् जीवन मरण से मोक्ष है और मोक्ष का एक सरल उपाय 'यज्ञ' आदि करना है जिनमें मंत्रों को यदि शुद्ध रूप से उच्चरित न किया जाए अथवा बिना सही अर्थ जाने किया जाए तो सारा प्रयास विफल हो जाता है। इसके लिए प्राचीन ऋषियों से लेकर, जो स्वयं 'मंत्रदृष्टा' मात्र थे (रचयिता नहीं), वैदिक भाषा कालतः एक दूरस्थ या अतिदूरस्थ भाषा थी और उसके प्रगाढ़ परिचय के लिए उस वैदिक भाषा का अतिगंभीर और व्यापक चिंतन-मनन अतिआवश्यक था। यही कारण है कि छह वेदांगों में से चार – शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त तथा छन्दस् – का प्रत्यक्ष संबंध भाषा से है।

2.2 वाक्

ऋग्वेद संहिता से लेकर 'भाषा' के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त शब्द 'वाक्' है। वाक् की संकल्पना भारतीय चिंतन में बड़ी विचित्र है। वाक् नित्य है, वाक् ब्रह्म है, 'वाग् वै विराट्, वाग् वै सरस्वती, ... वाग् वै मतिः, वा वै धीः .....' और वाक् के तीन स्तरों के रूप में द्युलोक, अंतरिक्ष और पृथ्वी की कल्पना की गई है। वाक् ही देवताओं की धारिका और प्रेरिका शक्ति है।

वाक् हमारी भाषाई अभिव्यक्ति शक्ति है, यह वह नैसर्गिक शक्ति है जिससे हम कोई वाचिक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। वाक् के कई पर्याय मिलते हैं किंतु आगे चलकर 'भाषा' शब्द भाषा विशेष (जैसे, संस्कृत, पवन, म्लेच्छ भाषा आदि) के लिए सीमित हो गया और 'वाणी' शब्द बहिः निःसृत वाचिक अभिव्यक्ति के लिए, विशेषतः उच्चारण गुणताओं के वैचित्र्य के लिए, सीमित हो गया।

वाक् विषयक उल्लेखनीय भाषा चिंतन है वाक् के चार रूप या चार अवस्थाएँ मानना। ऋग्वेद में ही इस ओर विशेष इंगित है :

> चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा मे मनीषिणः।
> गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति।।
>
> (1-164-45)

इस मंत्र में विद्वानों द्वारा जानने योग्य चार रूप बताए गए हैं – इनमें तीन तो गुफ़ा में छिपे रहते हैं, चौथा रूप मनुष्य बोलते हैं। सायण, गौडपाद और भर्तृहरि के अनुसार ये रूप हैं – परा, पश्चयंती, मध्यमा और वैखरी। सायण ने इसकी व्याख्या इस प्रकार है :

> "एका एव नादात्मिका वाङ्. मूलाधाराद् उदिता सती *परा* इतिह उच्यते। नादस्य च सूक्ष्मत्वेन दुर्निरूपत्वात् सा एव हृदय गामिनी *पश्यंती* इति उच्यते योगिभिः द्रष्टुं शक्यत्वात्। सा एव बुद्धिं गता विवक्षां प्राप्ता *मध्यमा* इति उच्यते, मध्ये हृदयाख्य उदीयमानत्वात् मध्यमायाः। अथ यदा सा एव वक्त्रे स्थिता तालु-ओष्ठ-आदि व्यापारेण बहद् निर्गच्छति तथा *वैखरी* इति उच्यते।"

यदि विपरीत क्रम से चलें तो मुखोच्चरित ध्वनियों के माध्यम से बाहर आने वाली भाषा 'वैखरी' है। **वैखरी** वाक् का वह रूप है, जिसे हम सुनते या बोलते हैं। भर्तृहरि द्वारा इसका स्वरूप इस प्रकार वर्णित है :

स्थानेषु विधृते वायौ कर्तृवर्ण परिग्रहा।
वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्ति निबंधना।।

[वैखरी भाषा विभिन्न उच्चारण स्थानों में वायु के अवरोध से उत्पन्न होती है। इसमें वर्णों की पृथक्-पृथक् सत्ता रहती है और इसका संबंध सीधा वक्ता की श्वास प्रक्रिया से होता है।]

किंतु मुख से बाहर आने वाली भाषा ही मनुष्य की भाषा का एकमात्र रूप नहीं है। हमारा मस्तिष्क कुछ-न-कुछ सोचता रहता है और वह भाषा के माध्यम से ही सोचता है। इस आंतरिक मनोगत भाषा को **मध्यमा** कहा गया है। मध्यमा का लक्षण भर्तृहरि ने इस प्रकार बताया है :

केवलं बुद्ध्युपादाना क्रम रूपानु पातिनी।
प्राणवृत्ति मतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते।।

[मध्यमा भाषा के केवल प्रयोक्ता की बुद्धि में रहती है। उसकी आंतरिक भाषा ध्वनियों में क्रम रहता है और वह व्यक्ति की श्वास प्रक्रिया का अतिक्रमण कर जाती है।]

इस आंतरिक भाषा मध्यमा में भी कर्ता, कर्म, क्रिया आदि उसी क्रम में रहते हैं जिस क्रम में वैखरी में, अंतर केवल यह है कि मध्यमा में श्वास प्रक्रिया से कोई संबंध नहीं होता है। इस प्रकार मध्यमा मनोगत वाक् है। जब हम बोलते हैं तो उसके ठीक पहले मनोगत भाषाबंध तैयार हो जाता है जो हमारे तंत्रिका तंत्र (नर्वससिस्टम) को प्रेरित कर वैखरी अवस्था पर वाक् को ले जाता है।

पश्यंती मध्यमा से पूर्व की वाक् अवस्था है। भर्तृहरि के अनुसार :

अविभागा तु पश्यंती सर्वतः संगतक्रमा।
स्वरूप ज्योति रेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी।।

[भाषा की पश्यंती अवस्था में उसकी ध्वनियों या पदों में कोई क्रम नहीं रहता, इसलिए उसका किसी भी दृष्टि से विभाजन या विश्लेषण संभव नहीं है। पश्यंती भाषा की अवस्था में मनुष्य को अपना आंतरिक ज्योतिर्मय स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। भाषा का यह सूक्ष्म रूप अविनाशी है।]

पश्यंती एक – भाषाहीनता की स्थिति है। 'ध्यान' की स्थिति में यही वाक् रूप व्यवहृत होता है। पश्यंती हृदय गामिनी है, सूक्ष्मस्वरूप है, और केवल योगियों द्वारा देखी जा सकती है। यह वैखरी तथा मध्यमा की भांति भाषा विशेष से तो बद्ध नहीं है किंतु 'भाषा' (सार्वत्रिक भाषा) से मुक्त नहीं मिली है। यह संप्रत्ययात्मक (conceptual) भाषा स्थिति है।

किंतु वाक् का चौथा रूप **परा** पूर्णतया सबसे मुक्त है। सायण के अनुसार यह 'एका' है, नादात्मिका (नादरूपा) है, मूलाधार में उदित होती है, और 'परा' है। यह वागद्वैतवाद का अनुपम उदाहरण है – यहाँ न कोई देखने वाला है, न दिखाई पड़ने वाला वस्तु; न कोई ज्ञाता है, न जानने योग्य कोई वस्तु। यहाँ नामरूपात्मक सृष्टि का भी भेद नहीं है। यहाँ तक कि ज्ञाता का व्यष्टिपरक रूप भी नहीं रहता है। आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में कहा है :

भेदोद्ग्राहविवर्तेन लब्धाकारपरिग्रहा।
आम्नाता सर्व विद्यासु वागेव प्रकृतिः परा।।

[वाक् रूपी शक्ति के विवर्त के कारण ही सृष्टि विभिन्न आकार-रूप में दिखाई पड़ती है। इसीलिए सब शास्त्रों में वाक् को ही पराप्रकृति कहा गया है।]

इस प्रकार से वाक् के चारों रूपों का एक छोर 'वैखरी' हमें समाज से जोड़ता है तो दूसरा छोर 'परा' संपूर्ण सृष्टि की सत्ता से जोड़ता है। इसी तथ्य की ओर भर्तृहरि ने निम्नलिखित से इंगित किया है :

अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

अर्थात् भाषा प्रक्रिया के मूल में ही ब्रह्म है जिसके विवर्त के कारण शब्दों के अर्थ के रूप में जगत् के विभिन्न पदार्थों की प्रतीति होती है।

2.3 वाक्य

भारतीय चितन में वाक् का एक पर्यायवत् पद 'शब्द' है। इसे भी ब्रह्म माना जाता है अर्थात् शब्द ब्रह्म के समान अंतिम और मौलिक यथार्थ है, जिसके विवर्त या परिणाम के रूप में यह संपूर्ण सृष्टि है। 'शब्द' आत्मा या जीव या व्यक्ति-चेतना के लिए प्रयुक्त होता है और इस प्रकार व्यक्ति की भाषा उसकी संपूर्ण चेतना या उसके संपूर्ण 'स्व' की अभिव्यक्ति है। भर्तृहरि ने इसका विस्तार से विवेचन किया है (जिसका संक्षिप्त उल्लेख पिछले अनुच्छेदों में किया गया है) कि सूक्ष्मवाक् कैसे वैखरी में परिवर्तित होती है। सूक्ष्म वाक् अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए 'शब्द' रूप मे विवर्तित होता है।

"अथायमान्तरो ज्ञाता सूक्ष्मवागात्मना स्थितः।
व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते।।

इसी प्रक्रिया को और स्पष्ट करते हुए भर्तृहरि ने बताया है कि सर्वप्रथम अंतर ज्ञाता (अंतःकरण), अर्थ बोधन की इच्छा (विवक्षा) से युक्त मन के रूप को प्राप्त करता है तथा जठराग्नि से पाक को प्राप्त कर प्राण वायु को ऊपर की ओर प्रेरित करता है तथा प्राण वायु मन का आश्रय और तद् धर्म प्राप्त कर 'शब्द' रूप में अभिव्यक्त होती है।

इस प्रकार 'शब्द' अभिव्यक्ति की परम इकाई है : वह वक्ता के द्वारा एक समय में दिया अखंड संदेश है और इस दृष्टि से शब्द ही आधुनिक भाषाविज्ञान का डिस्कोर्स् (प्रोक्ति) और भाषाविश्लेषण करते समय वही आधुनिक भाषाविज्ञान का टेक्स्ट (पाठ्य) है।

वैयाकरणों ने शब्द की अखंडता पर सर्वत्र ज़ोर डाला है। पूरा+कथन (=शब्द) अखंड होता है। उसका वाक्यों में विखंडन और वाक्य का पदों में विखंडन और पदों का प्रकृति-प्रत्ययों में विखंडन केवल भाषा-विश्लेषक द्वारा सुविधार्थ अपनाई गई प्रक्रिया है, यथार्थ नहीं। श्रोता तो पूरे संदेश को अखंड रूप से ग्रहण करता है और शब्द बोध में पूर्वापर-क्रम होते हुए भी विच्छिन्नता कहीं नहीं होती।

शब्द (=प्रोक्ति) की लघुतम इकाई वाक्य है। यह भी अपने स्तर पर अखंड है यद्यपि भाषाविश्लेषण की दृष्टि से वाक्य को पदों का (पद वाक्य के विखंडन से प्राप्त भाषिक इकाई है) समूह कहा गया है। प्रसिद्ध उक्ति है, "आकांक्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थ ज्ञान हेतु पद समूहो वाक्यम्'। वाक्य पदसमूह है, पदों के माध्यम से ही वाक्यार्थ ज्ञान होता है

और पदों को आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि की कसौटियों पर खरा उतरना पड़ता है, अन्यथा पदसमूह न होकर वह पदों का ढेर है और वाक्य की सत्ता को नहीं प्राप्त कर सकता।

वाक्य की आंतरिक रचना के संबंध में पतंजलि की एक प्रसिद्ध उक्ति है 'एक तिड्. वाक्यम्' (भूवाद्यो धतवः सूत्र का भाष्यवार्तिक)। क्रिया पद और कारक पदों से युक्त अर्थात् तिड.न्त और सुबन्त पद आदि अनेक पदों के समूह को वाक्य कहा गया है। तिड.न्त रूप तो केवल एक होता है किंतु सुबन्त पद, जो एकाधिक कारकों में होते हैं, अनेक होते हैं। किंतु इन पदों को आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि की कसौटी पर खरा उतरना होता है।

वाक्य के आंतरिक विश्लेषण का आरंभ 'तिड.ङ्' से होता है। स्थूलतः तिड्. वे प्रत्यय हैं जो धातु प्रकृति में लगते हैं, जैसे 'पठति' में 'पठ्+ति', किंतु इनसे क्या बोध होता है, यह भारतीय भाषा चिंतक की एक महत्वपूर्ण खोज है। 'तिड्.' से क्रिया के आश्रय 'कर्ता' और 'कर्म' का तथा 'संख्या', 'काल' और 'भाव' का बोध होता है। पाणिनि के सूत्र 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' (3-4-49) से तिड्. प्रत्यय सकर्मक धातुओं से विहित होने पर 'कर्ता' और 'कर्म', तथा अकर्मक धातुओं से विहित होने पर 'कर्ता' और 'भाव' अर्थ को अभिहित करता है : 'संख्या' अर्थ का अन्वय तिड.र्थ के कर्ता होने पर उस से, तथा कर्म होने पर कर्म से होता है? 'काल' का अन्वय सदा धात्वर्थ-व्यापार से होता है। तिड्. के विपरीत धातु-अंश कर्ता-कर्म से भिन्न सभी कारकों को नियमित करता है, यह नियमन कुछ अवयव पदों से भी होता है, जैसे 'सूर्याय स्वाहा' में स्वाहा द्वारा सूर्य की चतुर्थी विभक्ति का नियमन।

2.4 क्रिया की संकल्पना

वाक्य रचना समझने के लिए क्रिया की संकल्पना सही-सही जानना बहुत आवश्यक है। क्रिया की स्थूल संकल्पना प्रायः सभी के पास है – 'बच्चा दूध पी रहा है' में बच्चा 'पीने' की क्रिया कर रहा है, 'मोहन खाना खा रहा है' में मोहन 'खाने' की क्रिया कर रहा है। किंतु जितनी गहराई से भारत के प्राचीन भाषा चिंतकों ने विवेचना की है, उसके पास आज के पाश्चात्य चिंतक अब पहुँच रहे हैं।

पहली महत्वपूर्ण संकल्पना यह है कि वाक्य में धातु से निर्दिष्ट 'क्रिया' अनेक आनुक्रमिक क्रियाओं के समुच्चय का संघ है अर्थात् प्रत्येक क्रिया अनेक अवयवभूत या गौण क्रियाओं से मिलकर बनती है। उदाहरणार्थ कोई सज्जन खाना खा रहे हैं। क्रिया विश्लेषणार्थ चल कैमरे से एक वीडियो रील तैयार की जा रही है। कोई उस रील को फ्रेम दर फ्रेम देखे तो उसे दिखाई पड़ेगा कि वे रोटी तोड़ रहे हैं (तोड़ना) या दाल-सब्जी में उसे डुबो रहे हैं (डुबोना) : मुँह के पास कौर पहुँचा रहे हैं (कौर डालना) : दाँतों से चबा रहे हैं (चबाना) : कुछ द्रवित कर कंठ एवं भोजन नालिका से जठर में पहुँच रहे हैं (निगलना)। किंतु इन फ्रेमों को धाराप्रवाह से देखें तो पूरी प्रक्रिया के लिए कहेंगे 'खाना'। भर्तृहरि ने 'बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रयेति व्यपदिश्यते' द्वारा इसे स्पष्ट किया है। उनके अनुसार प्रत्येक क्रिया वस्तुतः अनेकानेक उपक्रियाओं अथवा गौण क्रियाओं का समूह है। उपक्रियाएँ क्रमशः एक के बाद एक निष्पत्ति को प्राप्त करती हैं और अंत में मुख्य क्रिया निष्पन्न होती है। किंतु सामान्य व्यक्ति इन सब उपक्रियाओं अथवा गौण क्रियाओं की भिन्नताओं की उपेक्षा करता है और अभेद करते हुए एक मुख्य क्रिया का नाम देता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण संकल्पना यह है कि क्रियाओं की दो स्थितियाँ होती हैं। ये हैं – साध्या और सिद्धा। सिद्धा स्थिति वह स्थिति है जब क्रिया व्यापार निष्पन्न हो चुका है, किंतु सिद्धा

स्थिति के पूर्व एक कालव्यापी साध्या स्थिति है। यास्क ने (और बाद में भर्तृहरि आदि ने भी) इस साध्या स्थितिगत क्रिया के छह भाव गिनाये हैं – 'जायते ऽ स्ति विपरणमते वर्धते ऽ पक्षीयते विनश्यति' । क्रिया उत्पन्न या आरंभ होती है, क्रिया अपरिवर्तित रूप में कुछ क्षण विद्यमान रहती है, क्रिया में फिर परिवर्तन होना शुरू हो जाता है, फिर क्रिया में वृद्धि आती है, वृद्धि के शिखर पर पहुँचने के बाद वह ढलने (कम होने) लगती है, और अंत में क्रिया समाप्त, विरामावस्था या विनाश को प्राप्त होती है। सभी क्रियाएँ इस प्रकार छह स्थितियों से गुजरती हैं।

प्राचीन मनीषियों ने सभी धातुओं के मूल में तीन धातुएँ मानी हैं। ये समावेशी धातुएँ हैं – 'अस भुवि', 'भू सत्तायाम्', और 'डुकृञ् करणे'। यदि 'सः पठति' कहते हैं तो उसका अर्थ होता है, 'सः पठनं करोति', यदि 'सः उत्पद्यते' कहते हैं तो उसका अर्थ होता है, 'स : उत्पन्नो भवति'; और यदि 'धनं क्षीयते' कहते हैं, तो उसका अर्थ होता है 'धनस्य क्षतिरस्ति'। इन तीनों, से व्यक्त आज के 'एक्शन', 'प्रासेस' और 'स्टेट' धातुओं की संकल्पना प्राचीन काल में भी उपस्थित थीं, यह हमारे चिंतन की श्रेष्ठता का नमूना है।

एक अन्य महत्वपूर्ण संकल्पना 'फल' और 'व्यापार' की है। प्रत्येक धातु के 'फल' और 'व्यापार' दो अर्थ होते हैं। सामान्य भाषा में 'फल' वह है जिसकी प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर व्यक्ति किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। और इस फल की प्राप्ति के लिए व्यक्ति जो-जो कार्य करता है वह क्रिया व्यापार है। व्याकरण में भी कुछ सीमा तक यही अर्थ है। 'व्यापार' क्रिया की साध्यावस्था से जुड़ा है और 'फल' क्रिया की सिद्धावस्था से। कभी-कभी ऐसा होता है कि 'व्यापार' तो एक ही है किंतु फल की भिन्नता से पृथक्-पृथक् धातुओं का प्रयोग होता है। 'मोहन आगरा से दिल्ली जा रहा है' में आगरा से वियोग और दिल्ली से संयोग व्यापार का फल है, किंतु 'आगरा से निकल रहा है' में 'निकलना' वियोग -फल है और 'दिल्ली पहुँच रहा है' में 'पहुँचना' संयोगफल है। वैयाकरणों का कहना है कि 'व्यापाराश्रय' कर्ता है और 'फलाश्रय' कर्म है। साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि प्रत्येक 'व्यापार' का 'फल' अवश्य होता है। अतएव तर्कतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वाक्य में कर्म अवश्य होगा। और तब सभी वाक्य सकर्मक हो जाएँगे। इसका उत्तर यह है कि सामान्यतया सामान्य वाक्य कर्मयुक्त होता है किंतु जब धातु ऐसी हो कि कर्ता ही व्यापाराश्रय हो और फलाश्रय भी कर्ता हो तो वाक्य अकर्मक बन जाता है। जैसे, 'मोहन सोता है' में मोहन 'सोना' क्रिया का व्यापार भी करता है और 'सोना' क्रिया का 'फल' भी भोगता है। पाश्चात्य चिंतन में 'व्यापार', 'फल', 'व्यापाराश्रय', 'फलाश्रय' जैसी संकल्पनाएँ नहीं हैं और इस कारण अकर्मक-सकर्मक का भेद स्पष्ट करने में वे असमर्थ रहते हैं।

2.4.1 काल

काल अर्थात् समय पर बहुत प्राचीन काल से भारतीय दर्शन में चिंतन होता आ रहा है। वेदांत के अनुसार क्रमता (जो कि काल का मूल लक्षण है) ब्रह्म में नहीं होती है। अतएव काल वास्तविक सत्ता नहीं है, प्रातिभासिक सत्ता है। फिर भी इस अयथार्थ प्रातिभासिक सत्ता पर विचार करते हुए योगदर्शन संकेत करते हैं कि एक परमाणु पूर्व स्थान को छोड़ बाद वाले स्थान के साथ जब संयोग करता है उस काल (कालावधि) को 'क्षण' कहते हैं और 'क्षण' के निरंतर प्रवाह को 'क्रम' कहते हैं। कालावधि और क्रमता काल की जीवनी संकल्पना है।

वस्तुतः काल एक नित्य और विभु शक्ति है, अतएव काल का कोई भेद तत्वतः नहीं होता है। जगत् में व्यवहार में सुविधा के लिए भेद किये जाते हैं। दर्शन के अनुसार काल की प्रकाशिका (दिखाई पड़ने वाली) और अप्रकाशिका (दिखाई न पड़ने वाली) शक्तियाँ मानी जाती हैं। प्रकाशिका के अंतर्गत 'वर्तमान' आता है और अप्रकाशिका के अंतर्गत 'अतीत'

और 'अनागत' आते हैं। काल-प्रवाह के कारण अनागत (भविष्य) का एक क्षण वर्तमान होते हुए अतीत बन जाता है। इसी कारण भूत-भविष्य-वर्तमान परस्पर अटूट रूप से जुड़े हुए हैं।

भूत (अतीत) : अतीत की अत्यंत वैज्ञानिक परिभाषा है 'आरब्ध परि समाप्तत्वम्'। यदि कोई क्रिया आरंभ होकर समाप्त हो गई हो अर्थात् वर्तमान में चल नहीं रही है तो भूत काल है। संस्कृत व्याकरण में इसके अद्यतन, अनद्यतन और परोक्ष तीन भेद किए गए हैं।

वर्तमान काल : जो क्रिया आरंभ होकर अभी समाप्त नहीं हुई है या पूर्ण नहीं हुई है या समाकलीन है, वह वर्तमान काल की कही जाती है। इसकी परिभाषा यों दी है : 'प्रयोग समकालीनत्वम् आरब्धापरिसमाप्तत्वं वा'।

भविष्यत् काल : वर्तमान काल से उत्तरवर्ती काल भविष्यत् काल है। भर्तृहरि ने इसके चार भेद किये हैं : सामान्य भविष्यत्, अद्यतन भविष्यत्, अनद्यतन भविष्यत्, अद्यतनानद्यतन भविष्यत्।

विधि

उपरिलिखित काल-विवेचन का प्रतिज्ञप्त्यात्मक (प्रकथनात्मक) वाक्यों से संबंध होता है। विधि के वाक्य काल के क्षेत्र के बाहर होते हैं। इन विध्यात्मक वाक्यों के अंतर्गत सबसे व्यापक क्रिया व्यापार 'प्रवर्तना' है। जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कार्य विशेष के लिए प्रेरित करता है, चाहे आदेश देकर, चाहे प्रार्थना करके या चाहे औचित्य बताकर। इनके लिए संस्कृत में लोट् और लिङ्. लकार बहुलता से लगते थे।

2.4.2 वाक्य-प्रकार

पाणिनि ने वाक्य के प्रकारों का विस्तार से, किंतु सूत्रात्मक रीति से, विवेचन किया है। सामाजिक भाषा व्यवहार में प्रयुक्त ये वाक्य प्रकार विशिष्ट लकार लगाने से, विशिष्ट अव्यय लगाने से और विशिष्ट स्वरगुणों (उदात्त, अनुदात्त, त्वरित, प्लुत आदि) को लगाने से अभिव्यक्त होते थे। विद्या निवास मिश्र ने इसको 'भारतीय भाषाशास्त्रीय चिंतन' ग्रंथ में विस्तृत रूप से समझाया है। यहाँ नीचे संक्षेप में भाषाव्यवहार के परिप्रेक्ष्य में उनके नामों का उल्लेख किया जा रहा है।

वार्तालाप के प्रारंभ में (अभ्यादान वाक्य), सीधे प्रश्न के लिए (प्रश्न वाक्य), 'हाँ' उत्तर की अपेक्षा रखने वाले प्रश्न के लिए (प्रत्यारंभ वाक्य), प्रश्न के उत्तर के लिए (पृष्ट प्रतिवचन वाक्य), अभिवादन के उत्तर के लिए (प्रत्याभिवादन वाक्य), प्रश्न के द्वारा समर्थन के लिए (सम्प्रश्न वाक्य), दूर से पुकारने के लिए (दूराह्वान वाक्य), आज्ञा विधि के लिए (विधि वाक्य), आदेश के लिए (प्रैष वाक्य), अनेक कार्यों के लिए एक साथ आदेश के लिए (विनियोग वाक्य), निवेदन के लिए (प्रार्थना वाक्य), अनुमति लेना के लिए (अनुक्षैषणा वाक्य), मनचाही करने की आज्ञा लेने के लिए (अतिसर्ग वाक्य), आदर के लिए (अधीष्ट वाक्य), अपने उद्देश्य प्रकट करने के लिए (कामप्रवेदन वाक्य), विशेष कार्य के लिए न्यौतना (नियंत्रण वाक्य), अनेक विकल्प के साथ-न्यौतना (आमंत्रण वाक्य), वादा करने के लिए (प्रति श्रवण वाक्य) आदि अनेक वाक्यों का उल्लेख पाणिनीय अष्टाध्यायी के 3.3, 3.4, 8.1, 8.2 में बहुलता से है। आज के पाश्चात्य संप्रेषणात्मक व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में आप इनकी श्रेष्ठता देख सकते हैं।

2.4.3 कारक

क्रिया की निष्पत्ति स्वयं नहीं हो सकती है। उसके लिए कोई-न-कोई प्रवर्तक होना चाहिए जो उस क्रिया का आरंभ कर सके, उसके लिए कोई-न-कोई साधन होना चाहिए जिससे वह क्रिया निष्पन्न हो सके, और उसके लिए कोई-न-कोई आधार (अधिकरण) होना चाहिए

जहाँ वह निष्पादित हो सके। क्रिया के निष्पादन में उपरिलिखित तथा अन्य समानधर्मा तत्व या घटक जो 'साधन' रूप में आते हैं उन्हें 'कारक' कहते हैं।

'साधन' की परिभाषा यों दी गई है – "साध्यते ऽ नेन क्रिया इति साधनम्" अर्थात् साधन वह है जिसके द्वारा क्रिया सिद्ध या निष्पन्न हो सके। साधन को गुणसमुदाय या शक्तिसमुदाय भी कहा गया है – इस प्रकार वे सभी 'शक्तियाँ' या 'गुण' जो क्रिया की सिद्धि में निमित्त हैं, 'साधन' कहे जाते हैं और साधन का ही दूसरा नाम कारक है।

दूसरे शब्दों में 'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्' अर्थात् क्रिया के 'जनकता-रूपधर्म' से युक्त को 'कारक' कहते हैं। 'जनकता' कारणता-स्वरूप ही होती है और कारणता को ही दूसरे शब्दों में उत्पादकता या निष्पादकता कहते हैं। 'क्रिया निष्पादकत्वं कारकत्वम्' उक्ति भी कारक की प्रकृति को स्पष्ट करती है। उदहारणार्थ 'चावल पक रहा है' की स्थिति पर विचार करें। कौन पकाता है, क्या (किसे) पकाता है, किसके लिए पकाता है, किसके द्वारा या माध्यम या प्रयोग से पकाता है, किसमें पकाता है इत्यादि अनेक कार्यों के आश्रय रूप में कारक के अनेक भेद – कर्ता, कर्म आदि – संभव हैं, ये अवांतर व्यापक किसी-न-किसी रूप में प्रधान क्रिया की निष्पत्ति के कारण बनते हैं और इस कारण इनको 'कारक' कहते हैं।

संस्कृत व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में जहाँ क्रिया, धात्वर्थ, विभक्त्यर्थ सुब् विभक्ति, तिङ् विभक्ति, अन्वय आदि तकनीकी शब्द हैं, "विभक्त्यर्थ द्वारा क्रियान्वयित्वं कारकम्" कहा गया है, अर्थात् "विभक्ति के अर्थ द्वारा क्रिया के साक्षात् प्रत्यक्ष रूप से अन्वित होना ही कारकत्व है।" ध्यान दें कि क्रिया का जब विभक्त्यर्थ के साथ अन्वय होता है तब क्रिया का अर्थ प्रधान होता है। जैसे 'चैत्रो गच्छति' वाक्य में 'चैत्र' के बाद आने वाली प्रथम विभक्ति का अर्थ और 'गम्' धातु के बाद आने वाली '-ति' विभक्ति का अर्थ दोनों अर्थ अभिन्न होकर 'गमन' क्रिया में अन्वित होते हैं। अतः यहाँ गमन क्रिया की प्रधानता मानी जाती है। किंतु जब विभक्त्यर्थ का नामार्थ (नाम=संज्ञा आदि) के साथ अन्वय होता है तब विभक्ति का (न कि धातु का) अर्थ प्रधान होता है, जैसा कि षष्ठी विभक्ति में। (इसीलिए षष्ठी कारक नहीं है)।

कारक के भेद

यों तो कर्तृत्व (कारकत्व) आंतरिक रूप में सर्वत्र एक है अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त सभी कारक मिल कर एक ही कर्तृत्व का सृजन करते हैं : किंतु इन्हें विभक्त करके देखने पर हम विभक्ति आदि के द्वारा बँटा हुआ पाते हैं और उनके भेद मान सकते हैं।

"अपादान–सम्प्रदान–करणाधार–कर्मणाम्।
कर्तुश्च भेदतः षोढा कारकं परिकीर्तितम्।।"

के अनुसार कम प्रधान से अधिक प्रधान क्रम में छह कारक अपादान, संप्रदान, करण, अधिकरण, कर्म और कर्ता हैं। नीचे इनका विवेचन प्रधानता के क्रम से अर्थात् कर्ता, कर्म, अधिकरण, करण, संप्रदान, अपादान के क्रम में किया जा रहा है।

कर्ता

कर्ता की परिभाषा 'स्वतंत्रः कर्ता' सूत्र (अष्टाध्यायी 1-4-24) से पाणिनि ने की है। 'क्रियायां स्वातंत्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्' के अनुसार कर्ता क्रिया का स्वतंत्र, मुख्य और अ-पराश्रित स्रोत है। 'तथा हि स्वतंत्रः कर्ता। स्वातंत्र्यश्च धात्वर्थ व्यापाराश्रयत्वम्'। उदाहरणार्थ– 'चावल पक रहा है' इस स्थिति में ये सभी कथन सत्य हैं – देवदत्तः पचति, स्थाली (बर्तन जिसमें चावल पकते है) पचति, अग्निः पचति, एधांसि (लड़कियाँ) पचन्ति, तण्डुल (चावल) पच्यते। ऐसी सर्वत्र कर्तृता स्थिति में भाष्य में कहा गया है कि 'कथं पुनः

ज्ञायते कर्ता प्रधानमिति यत्सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु कर्ता प्रवर्तयिता भवति।" अर्थात् कर्तृत्व की संकल्पना के अनुसार देवदत्त के अतिरिक्त स्थाली, अग्नि, एधांसि, तण्डुल सभी में कर्तृत्व विद्यमान है, तो कैसे जाना जा सकता है कि 'कर्ता' कौन है। उत्तर यह है कि कर्ता स्वतंत्र है, वह प्रवृत्ति (क्रियारंभ) या निवृत्ति (क्रिया समाप्ति) करने के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं है। सभी कारकों (कर्तृताशक्ति वालों) के होते हुए भी कार्य (क्रिया, क्रिया व्यापार) तब तक नहीं होता जब तक इन कारकों के कार्य करने के लिए कोई प्रेरक न हो – इस कारण कर्ता प्रधान है और चेतनता उसकी आवश्यकता है। चेतनता के कारण वह अपने यत्न-प्रयास (तकनीकी वैयायिक पद 'कृति') कर सकता है और कृतिमान् बन सकता है।

सूक्ष्मतः कर्ता के दो भेद हैं – (1) स्वतंत्र या शुद्ध कर्ता (पाणिनि के 'स्वतंत्रः कर्ता' द्वारा प्रतिपादित) जिसका उदाहरण है 'देवदत्तः ओदनं पचति, और (2) हेतु या प्रेरक कर्ता (पाणिनि के 'तत्प्रयोजको हेतुः' द्वारा प्रतिपादित) जिसका उदाहरण है, 'कृष्ण देवदत्तेन ओदनं पाचयति'। दूसरे शब्दों में मूलधातु के प्रधान व्यापार के आश्रय को शुद्ध कर्ता तथा प्रेरणार्थक धातु के प्रधान व्यापार के आश्रय को प्रयोजक या हेतु कर्ता कहते हैं। एक तीसरा भेद भी माना जा सकता है, वह है 'कर्मकर्ता', जैसे, 'देवदत्तो यज्ञदत्तं गोकुलं गमयति' में देवदत्त प्रयोजक कर्ता है और वास्तविक क्रिया करने वाला इस वाक्य का कर्म यज्ञदत्त है।

कर्म

भारतीय प्राचीन भाषा चिंतन में धातु के 'व्यापार' और 'फल' दो अर्थ होते हैं। 'व्यापार' का आश्रय 'कर्ता' होता है और उस व्यापार से उत्पन्न 'फल' का आश्रय 'कर्म' होता है। उदाहरणार्थ, 'देवदत्तः ओदनं पचति' (देवदत्त चावल पकाता है) में धात्वर्थ फल विक्लित्ति (चावल का फूलना-पकना) है और इस विक्लिति का आश्रय (कौन फूल रहा है, कौन पक रहा है इसका उत्तर) 'ओदन' है। 'देवदत्तः घटं करोति' (देवदत्त घड़ा बनाता है) में धात्वर्थ फल 'उत्पत्ति' (उत्पन्न होना) है और इस उत्पन्न होने का आश्रय (कौन उत्पन्न हो रहा है इसका उत्तर) 'घट' है।

कर्म की सामान्य व्युत्पत्ति मूलक आख्या 'क्रियते यत् तत् कर्म' है (कर्ता अपनी क्रिया से जिसे करता है वह कर्म है)। पाणिनि ने 'कर्तु-रीप्सततमं कर्म' (1-4-40) सूत्र द्वारा कर्म को परिभाषित किया है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं – 'कर्तुः क्रियया आप्तुं इष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्' (कर्ता का अपनी क्रिया द्वारा प्राप्त करने का इष्टतम कारक कर्म है)। शास्त्रों में यह शंका उठाई गई कि इष्टतम क्यों कहा, केवल इष्ट क्यों नहीं। उत्तर में यह उदाहरण दिया गया – 'पयसा ओदनं भुङ्क्ते' (दूध के साथ चावल खा रहा है)। यहाँ खाने वाला दूध भी ले रहा है और चावल भी, दोनों इष्ट हैं, किंतु 'चावल' मुख्य है और इष्टतम भी।

संस्कृत व्याकरण में कर्म के कई प्रकार से भेद किये गये हैं। वाक्यपदीय के अनुसार :

निवर्त्यं च विकार्यं च प्राप्यं चेति त्रिधा मतम्।
तच्चेप्सिततमं कर्म चतुर्धाऽन्यत्तु कल्पितम्।।
औदासीन्येन सत् प्राप्यं यच्च कर्तुरनीप्सतम्।
संज्ञान्तरैरनाख्यातं यद् यच्चाप्यन्य पूर्वकर्म।।

(3-45 और 46)

(i) **निवर्त्य :** 'देवदत्तः घटं करोति'। घट क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। पहले नहीं था।

(ii) **विकार्य** : 'काष्ठं भस्म करोति'। काष्ठ, भस्म क्रिया के फलस्वरूप नष्ट या अस्तित्वहीन हो गया। 'सुवर्णं कुण्डलं करोति' स्वर्ण, क्रिया के बाद स्वर्ण न रहकर कुंडल हो गया।

(iii) **प्राप्य** : 'रूपं पश्यति'। रूप देखने के पहले भी था और बाद में भी है। 'वाराणसी गच्छति' में वाराणसी जाने के पहले भी था और बाद में भी है।

(iv) **उदासीन** : कर्ता की न इच्छा है, न अनिच्छा। 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' में तृण उदासीन कर्म है क्योंकि तिनका छूने की न इच्छा थी और न अनिच्छा।

(v) **अनीप्सित** : 'ओदनं भुंजामो विषं भुञ्क्ते' (चावल खाते-खाते विष खा गया) में विष खा तो लिया गया पर वह अनचाहा था।

(vi) **अनाख्यात** : पाणिनि ने इसे अकथित कहा है। कुछ इनी-गिनी क्रियाओ के अपादानादि कारक विशेषों के साथ यह आता है। जैसे 'गाय दुहना' = 'गाय से दूध दुहना'।

ये ऊपर के छह भेद प्रायः सार्वत्रिक (यूनीवर्सल) हैं। इनके अतिरिक्त एक (vii) 'अन्यपूर्वक' संस्कृत भाषा के विशिष्ट रूपों को स्पष्ट करने का प्रयास है।

अधिकरण

क्रिया निष्पादकों (=साधकों, करणों) में से एक आधार देने वाला करण होता है उसे 'अधिकरण' कहते हैं। पाणिनि ने 'आधारोऽधिकरणम्' सूत्र से बताया है। एक दृष्टि से अधिकरण 'कारक' नहीं है क्योंकि इसका क्रिया से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है – यह या तो 'कर्ता' का स्थल (लोकेशन) बताता है या 'कर्म' का। फिर भी भर्तृहरि के अनुसार :

कर्तृ कर्म व्यवहिताम साक्षात् धारयत् क्रियाम्/
उपकुर्वत् क्रियासिद्धौ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।। (3-148)

अर्थात् अधिकरण की कर्ता अथवा कर्म के आश्रय के रूप में क्रिया-संपन्नता के कार्य में उपकारी (उपकुर्वन्) होने के कारण क्रिया की सिद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका है–यदि स्थाली न हो तो चावल पकेगा किस में।

आधार को प्रायः तीन भेदों में विभाजित किया जाता है – औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। औपश्लेषिक में दो वस्तुओं का उपश्लेष (=संयोग, आधार-आधेय संबंध) होता है, जैसे 'करे शेते' (चटाई पर सोता है)। वैषयिक में विषयता (=विषय में, विषय के बारे में) संबंध होता है, जैसे 'मोक्षे इच्छा अस्ति', 'गमने रुचिः न अस्ति' आदि। अभिव्यापक में अभिव्याप्ति (अलग न होने वाली व्याप्ति) होती है, जैसे 'तिलेषु तैलम्', तिलों में से तेल को अलग कर लेने के बाद फिर से उन्हीं तिलों में उस तेल को भरा नहीं जा सकता, जब कि चटाई पर फिर से सोया जा सकता है और मोक्ष की फिर से इच्छा की जा सकती है।

करण

कोई भी व्यक्ति किसी क्रिया व्यापार को तब तक संपन्न नहीं कर सकता जब तक उसके पास उस क्रिया की साधक वस्तुएँ न हों, चावल तब तक नहीं पकेगा जब तक पात्र और ईंधन न हो। इन साधकों को 'करण' कहते हैं और पाणिनि के 'साधकतमं करणम्' सूत्र के अनुसार जो करण (=साधक) प्रकृष्ट रूप से क्रिया संपन्न करने वाला है वह 'करण' कारक है। यह प्रकृष्टता इस बात की है कि "बिना किसी व्यवधान के अर्थात् प्रत्यक्ष एवं अविलंब वह 'फल' को उत्पन्न करता है।" भर्तृहरि के शब्दों में :

क्रिया याः परिनिष्पत्तिर्यद् व्यपारादनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत्तदा स्मृतम्।।

संप्रदान एवं अपादान

कर्ता, कर्म, अधिकरण, करण सभी क्रियाओं के साथ आते हैं। अब दो कारकों की चर्चा की जा रही है जिनका प्रयोग विशिष्ट प्रकृति रखने वाली क्रियाओं के साथ होता है।

क्रिया का कर्ता अपनी क्रिया के फलाश्रय कर्म को जिससे विशेष संबंध स्थापित करता है, वह उद्देश्य भूत अर्थ संप्रदान कारक कहा जाता है। पाणिनि ने 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' (1-4-32) सूत्र से यही बात कही है। दूसरे शब्दों में कर्ता जन जिस 'अर्थ' के साथ कर्म या क्रिया के माध्यम से संबंध करना चाहेगा, तब उसे 'अर्थ' की संप्रदान संज्ञा होगी। सामान्य उदाहरण है – ब्राह्मणाय गां ददाति।

अपादानकारक का पाणिनीय सूत्र 'ध्रुवमपाये ऽ पादानम्' (1-4-24) यह बताता है कि किसी सापेक्षिक रूप से अचर स्थिति से किसी का स्थितिच्युत हो जाना अपादान (हट जाना) है। क्रिया के परिणामस्वरूप कोई किसी से अलग दूर विश्लिष्ट होता है। सामान्यतया यह विलगन स्थान या काल के किसी बिंदु से होता है किंतु कभी-कभी यह भावात्मक एवं बौद्धिक भी हो सकता है – मोहन घर से स्कूल जा रहा है, सुबह से पढ़ रहा है, शेर से डरता है।

अन्य कारकों की प्रथमा विभक्ति

इतना निर्विवाद है कि सभी कारक क्रिया के निष्पादन में कुछ-न-कुछ भूमिका निभाते हैं। प्राचीन भाषा चिंतकों का यह मत था कि वक्ता अपनी विवक्षा के अनुसार किसी भी कारक को 'प्रधान' (स्वतंत्र) तथा गौण (परतंत्र) बना सकता है (विवक्षातः कारकाणि भवन्ति)। मान लीजिए रोटी बनाने में वक्ता बेलन के किसी विशेष अन्यत्र दुर्लभ गुण को उच्च प्रकाश में लाना चाहता है तो कहेगा कि 'यह बेलन बहुत पतली रोटी बनाता है'। या कोई पतीली बहुत जल्दी गर्म हो जाती है किंतु तले के मोटेपन के कारण चावल जलने नहीं पाता है तो कहेंगे कि 'यह पतीली बहुत फूले-फूले चावल बनाती है।' ऐसी स्थितियों में प्रधान चेतन कर्ता क्षीणकर्तृत्व हो जाता है और वाक्य में अभिव्यक्त तक नहीं होता और ये गौण साधक जिनकी कर्तृता बढ़कर बतायी जाती है कर्ता बनकर प्रथमा विभक्ति में आते हैं। विवक्षा से कारक होते हैं यह भारतीय चिंतन इस दृष्टि से अति उल्लेखनीय है।

2.5 पद विचार

वाक्य की प्रकृति स्पष्ट करते हुए यह संकेत दिया गया था कि 'शब्द' अखंड है फिर भी विश्लेषण सौकर्य के लिए वाक्य – पद – प्रकृति प्रत्ययों की संकल्पना की जाती है। पदों का समूह वाक्य बनाता है किंतु पद स्वयं प्रकृति प्रत्ययों से बनते हैं।

पाणिनीय सूत्र 'सुप्तिड.न्तं पदम्' पद के स्वरूप को स्पष्ट करता है। सभी पद विभक्ति-प्रत्यन्त होते हैं – पदों में एक अंश 'प्रकृति' कहा जाता है, और दूसरा अंश प्रत्यय (विभक्ति-प्रत्यय)। यदि प्रकृति 'धातु' है तो 'तिड्.' प्रत्यय लगते हैं, यदि प्रकृति 'धातु भिन्न' (जैसे, संज्ञा, सर्वनाम आदि) है तो 'सुप्' प्रत्यय लगते हैं। धातु भिन्न प्रकृति को प्रातिपदिक कहते हैं।

संस्कृत व्याकरण में पाणिनीय सूत्र 'विभक्तिश्च' (1-4-104) के द्वारा सुप् और तिड्. प्रत्ययों को विभक्ति कहते हैं। सुप् प्रत्यय जिस प्रकृति में लगता है वह 'प्रातिपदिक' कहा जाता है जिसकी परिभाषा पाणिनीय सूत्र 'अर्थवत्अधातुः प्रत्ययः प्रातिपदिकम्' (1-2-45) द्वारा दी गई। यह मूल (सरल) या यौगिक हो सकता है। यौगिकता का माध्यम है – कृदन्त, तद्धितान्त या समास से समस्त पद बनना।

इन कृदन्त, तद्धित, समास आदि की संकल्पनाएँ पाठक के लिए पूर्णतया सुपिरचित है, इसलिए विस्तारभय से इनका विवेचन नहीं किया जा रहा है।

व्युत्पत्ति निरुपण

व्युत्पत्ति निरूपण के क्षेत्र में जितना व्यापक एवं गंभीर चिंतन-मनन प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा हुआ है उतना किसी भी देश या भाषा में आज तक नहीं हुआ है। इस अध्ययन कार्य में कोई बौद्धिक विलासिता नहीं है अपितु एक व्यावहारिक अनिवार्यता है। बिना 'अर्थ' समझे यज्ञ-यागादि का फल नहीं मिलता है और सही-सही अर्थ जानना ऋषियों के लिए भी एक दुष्कर कार्य था। 'मंत्रदृष्टारः' ऋषिगण भी कालतः दूरस्थ या अतिदूरस्थ थे। इस कारण एक पूरे-के-पूरे वेदांग 'निरुक्त' को यह दायित्व सौंपा गया। सर्वप्रथम निघण्टु में कठिन और अपरिचित शब्दों के सही-सही अर्थ ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया गया और आगे चल कर नैरुक्तों ने अर्थ निर्वचन की जटिल प्रक्रिया विकसित की।

निरुक्त ज्ञान-विज्ञान की वह शाखा थी जो शब्दों की व्याख्या अथवा निर्वचन करती थी। निर्वचन के दो पक्ष होते हैं – 'शब्द' और 'अर्थ'। शब्द का, व्युत्पत्ति-नियमों के द्वारा प्रकृति और प्रत्ययों में विभाजन किया जाता है और तत्पश्चात् वेद मंत्रानुकूल अर्थ स्पष्ट किया जाता है।

निरुक्त के परास में वे शब्द नहीं आते हैं जिनका अर्थ स्वयं प्रकृति–प्रत्यय विभाजन से ही पारदर्शी रीति से निकल आता है वे शब्द कभी-कभी आ जाते हैं जिनके अर्थ, प्रकृति-प्रत्यय विभाजन मात्र से ही स्पष्ट नहीं हो जाते हैं और निर्वचन का आश्रय लेना पड़ता है, और वे शब्द निरुक्त के क्षेत्र के ही हैं जिनकी व्युत्पत्ति अस्पष्ट और अनुमान गम्य नहीं है। इस तीसरी कोटि के शब्दों का विवेचन (i) इनसे मिलते-जुलते अर्थ वाले शब्दों के माध्यम से किया जाता है और यहाँ अर्थ एवं ध्वनियों के साम्य को विवेचन का आधार बनाया जाता है। 'अर्थ साम्य' के निश्चय के लिए दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है – (i) विवेच्य शब्द की प्रसंगानुकूलता और (ii) विवेच्य शब्द और जिस शब्द के साथ उसका संबंध स्थापित किया जा रहा है उन दोनों के बीच किसी अर्थ वैशिष्ट्य की समानता। ध्वनि-साम्य के निश्चयन के लिए विवेच्य शब्द और जिस शब्द के साथ उसका संबंध स्थापित किया जा रहा है उनमें किंचित् ध्वनि समानता होनी चाहिए। यदि ध्वनि समानता स्पष्ट नहीं है तो ध्वनि रूपांतरणों के विचित्र रीति से खोज नियमों के अनुसार उनमें ध्वनि साम्य संबंध विद्यमान होना चाहिए। ये ध्वनि रूपांतरण, अभी हाल के 'जनरेटिव फोनालोजी' के ध्वनि रूपांतरणों से कहीं अधिक प्रयोज्य एवं संगत हैं। नीचे इन ध्वनि रूपांतरणों के नियमों का कुछ संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

यास्क ने ध्वनि विकार की जिन प्रमुख दिशाओं का उल्लेख किया है, वे हैं – वर्णलोप, वर्णागम, वर्णविपर्यय और वर्णविकार।

(1) **वर्णलोप** : आदि लोप (स्कम्भ > कम्भन्), मध्यलोप (प्रत्यञ्च् > प्रतीच, उपधालोप (अञ्ज् > आज्य), टिलोप (मनस् > ईषिन् > मनीषिन्, अन्तलोप (ध्वंस् > ध्वान्त)

(2) **वर्णागम** : पृथ्वी > पृथिवी, जन्मन् > जनिमन्

(3) **वर्णविपर्यय** : श्चुत् > स्तोक

(4) **वर्ण विकार** : यह ध्वनि विकार यदि पास की किसी अन्य ध्वनि के प्रभाव से होते है तो उस 'परतंत्र विकार' कहते हैं और यदि ध्वनिविकार का संबंध अन्य ध्वनि से नहीं है तो उसे 'स्वतंत्र विकार' कहते हैं।

(क) **स्वर परतंत्र विकार :** दिन् > द्यु, पी > पयस्, गुह् > गूढ, कृ > चक्रि, तृ > तीर्ण

(ख) **व्यंजन परतंत्र विकार :**

(i) चवर्ग > कवर्ग – वच्+क्त > वूक्त, भज्+क्त > भक्त, उज्+र > उग्र

(ii) चवर्ग > ऊष्म – राज् + त्र > राष्ट्र

(iii) तवर्ग > चवर्ग – द्युत > ज्योतिष्

(iv) घोष > अघोष – दभ्+स > दिप्स

(v) कंठ घोष महाप्राण (ह) > मूर्धन्यीकरण–गुह > गूढ

(ग) **स्वर स्वतंत्र विकार :** ✓ पा > पितु, ✓ सि > सेतु, श्रु > श्लोक

(घ) **व्यंजन स्वतत्र विकार :** ✓ मन्द् > मण्डूक, वि+रुह् > वीरुध्, पच् > पाक, कित् > चित्र

आरंभ में व्युत्पत्ति के कुछ संप्रदाय यह मानकर चलते थे कि प्रत्येक शब्द 'धातुज' होता है अर्थात् उसके मूल में कोई-न-कोई धातु होगी। इस संप्रदाय वालों को नाना प्रकार के प्रत्ययों तथा ध्वनि-अंतरणें की कल्पना करनी पड़ती थी। पाणिनि ऐसा नहीं मानते थे, यह बात दूसरी है कि उन्होंने भी उणादि सूत्रों द्वारा नाना प्रकार के प्रत्ययों की कल्पना की। व्युत्पत्ति निरूपण बाद में लौकिक संस्कृत में लिखे महाकाव्यादि को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण बना रहा क्योंकि सभंगश्लेष और अभंगश्लेष से उत्पन्न अर्थ वैचित्र्य व्युत्पत्ति-विशेषज्ञ ही निकाल सकता था।

2.6 ध्वनि विवेचन

ध्वनि विज्ञान का जितना गंभीर और व्यापक अध्ययन भारत में हुआ है उतना निश्चयतः अन्यत्र नहीं हुआ है और इसको पाश्चात्य विद्वानों ने निर्विवाद माना है। छह वेदांगों में एक 'शिक्षा' का विषय ध्वनिविज्ञान है। शिक्षा और प्रातिशाख्य ग्रंथों में, आज से लगभग दो-ढाई हजार साल पहले बोलने की प्रक्रिया, उच्चारण-अवयव, उच्चारण प्रक्रिया, ध्वनियों का वर्गीकरण, उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न, मात्रा-काल, स्वराघात, स्वरसंधि के अतिरिक्त वैदिक ऋचाओं की वाचन रीति तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के साथ-साथ हस्तसंचालन के संबंध में विशद विवेचन है।

ध्वनि वर्गीकरणर

पाणिनीय शिक्षा के अनुसार 64 (या 63) वर्ण हैं :

स्वर : अ, आ, आ^3 इ; ई, ई^3; उ, ऊ, ऊ^3; ऋ, ॠ, ॠ^3 ; ऌ, ॡ^3; ए, ए^3; ओ, ओ^3; ऐ, ऐ^3; औ, औ^3; (योग 22)

स्पर्श : क ख ग घ ङ; च छ ज झ ञ; ट ठ ड ढ ण; त थ द ध न; प फ ब भ म (25)

अंतःस्थ : य, र, ल व (4)

ऊष्म : श, ष, स, ह (4)

अयोगवाह : अनुस्वार, विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपाध्मानीय (4)

यम : कुं खुं गुं घुं (4)

दुःस्पृष्ट : ळ (एक)

कुछ लोगों के अनुसार जो 'ळ' नहीं मानते या 'ऌ[3]' नहीं मानते वर्णों की संख्या 63 है। वर्णों का ऐसा वैज्ञानिक ध्वनिशास्त्रानुसारी क्रमीकरण संसार की किसी भाषा में नहीं है।

ध्वनि-उत्पादन

ध्वनि कहाँ से उत्पन्न होती है, उसमें कौन-कौन से अवयव किस प्रकार आपरिवर्तन करते हैं यह सब आज के स्वनविज्ञान के अध्ययनों में मिलता है किंतु प्राचीन भारतीय चिंतकों ने और भी गहराई से इसको जाना है। पाणिनीय शिक्षा के निम्नलिखित श्लोक इस पर प्रकाश डालते हैं :

"आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निं आहान्ति स प्रेरयति मारुतम्।।
मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्र जनयति स्वरम्।
. . . . . .
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः।।
स्वरतः कालतः स्थानान्प्रयत्नानु प्रदानतः।

आत्मा बुद्धि के द्वारा संदेशार्थ को इकट्ठा करती है, उन्हें कहने की इच्छा से मन को लगाती है। तब मन, इच्छा से युक्त, जठराग्नि को जगाती है। यह जठराग्नि अग्नि को और अग्नि वायु को प्रेरित करती है। यह वायु उरस्थल में विचरण करती हुई ध्वनि उत्पन्न करती है। यह कण्ठ प्रदेश में, फिर शिरोभाग में, फिर वहाँ से टकरा कर लौट कर मुख रन्ध्र से बाहर निकलती है। मुख विवर में ही विभिन्न प्रक्रियाओं के योग से वायु वर्णों को जन्म देती है, जिन्हें हम पाँच वर्णों में बाँट सकते हैं। स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदान के वैभिन्न्य के कारण ये वर्ण भिन्न-भिन्न होते हैं।

आत्मा-बुद्धि-अर्थ-मन-इच्छा-अग्नि-वायु-नाद – यह पूरी प्रक्रिया ध्वनि उत्पादन में अवश्य होती है किंतु इतनी सारी प्रक्रियाओं का मनुष्य को आभास नहीं होता है। कमल के सौ दलों को सूई एक साथ इतना शीघ्र भेद देती है कि पूरी प्रक्रिया केवल एक प्रतीत होती है (उत्पल पत्र शत सूची भेद न्याय)। उसी प्रकार यहाँ भी होता है।

उच्चारण-वाचन शुद्धता

भारतीय मनीषियों ने वैदिक मंत्रों के अतिरिक्त काव्यादि वाचन तथा सामाजिक भाषा में प्रयुक्त वार्तालाप में उच्चारण शुद्धता पर गहरा विचार किया है। पाणिनीय शिक्षा की निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुधा उद्धृत की जाती हैं :

शंकितं भीतमुद्धृष्टं अव्यक्तं अनुनासिकम्।
काकस्वरं शिरसि गतं तथा स्थान विवर्जितम्।।
उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलंबितं गद्गदितं प्रगीतम्।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम्।।

अर्थात् (1) शंकित होकर, (2) डरकर, (3) ज़ोर से चिल्लाकर, (4) अस्पष्टतापूर्वक, (5) नाक से नकिया कर, (6) कौए के स्वर जैसा, (7) मूर्धा पर जीभ को अनावश्यक मोड़ देते हुए, (8) निश्चित ध्वनि स्थान को छोड़ कर भिन्न स्थान से, (9) मुँह में ध्वनि या शब्द को काटते हुए, (10) तेज गति से, (11) मानो फेंक रहे हों, (12) अधिक रुक-रुक कर, (13) गद्गद स्वर से, (14) गाते हुए स्वर से, (15) शब्दों को चबाते हुए, (16) दीनता के साथ रिरियाते हुए, (17) अनावश्यक अनुनासिकता के साथ – इस प्रकार अक्षर और पदों का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में 'व्याघ्री यथा हरेत्' आदि श्लोक हैं। उनके अनुसार वर्ण, पद, वाक्य को स्पष्ट, मधुर और पूरा-पूरा उच्चरित करना चाहिए। जैसे मस्त हाथी एक-एक पैर रखता हुआ सुस्थिर गति से आगे बढ़ता है वैसे ही वक्ता को एक-एक पद स्पष्टतया स्थिरगति से बोलना चाहिए।

अर्थ विचार

अर्थ विचार की दिशा में भी प्राचीन भारतीय भाषा चिंतकों का अनुपम योगदान है जिसे सभी पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है। अर्थ की प्रकृति, अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया, अनेकार्थता की स्थिति में अर्थनिनिश्चय, आदि अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियों का विशद विवेचन इकाई-14 (अर्थ संरचना) में किया जा रहा है।

2.7 सारांश

भारतीय मनीषियों ने वाक् को उच्चारित भाषा से अधिक व्यापक अर्थ में लिया है। वाक् के चार रूप हैं – परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। इनमें केवल वैखरी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ने वाली भाषा है, शेष सबका संबंध मन में विचारों के प्रस्फुटन से है। इस तरह उन्होंने वाक् को व्यापक, दार्शनिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। वाक् को 'शब्द' भी कहा जाता है और भारतीय चिंतक शब्द को ब्रह्म कहते हैं। इस अर्थ में भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि संपूर्ण सृष्टि तथा चेतना की अभिव्यक्ति है।

भारतीय भाषा चिंतकों ने क्रिया की चर्चा करते हुए कार्य व्यापार की सत्ता को वस्तु जगत् के सत्य से जोड़ा है। कारकों के माध्यम से उन्होंने यह दिखाने का यत्न किया है कि क्रिया के निष्पादन में ये किस तरह साधन के रूप में काम करते हैं।

पद की संकल्पना भारतीय भाषा चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। पदों की रचना 'प्रकृति' और 'प्रत्यय' के योग से होती है। इस संदर्भ में प्रातिपदिक, कृदंत, समास आदि संकल्पनाएँ भारतीय भाषा चिंतन की देन है।

भारतीय मनीषियों ने निरुक्त में व्युत्पत्ति निरूपण की चर्चा की और यंत्रों की सहायता के बिना ही ध्वनियों का वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण प्रस्तुत किया। ये सब बताते हैं कि किस तरह भाषा चिंतन के क्षेत्र में पूर्ववर्ती चिंतकों ने विश्लेषण की गहराई तथा वर्णन की वैज्ञानिकता का परिचय दिया है।

अर्थ विचार संबंधी भारतीय चिंतन को आप आगे की इकाई 15 में पढ़ेंगे।

मध्यकालीन भाषाओं – पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में भी अनेक महत्वपूर्ण व्याकरण कृतियाँ मिलती हैं। पालि के कच्चायन और मोग्गलयन रचित, प्राकृत के वररुचि रचित और अपभ्रंश के हेमचंद्र रचित व्याकरण अति प्रसिद्ध हैं। किंतु ये पाणिनीय सूत्रनिरूपण शैली में रचित हैं और भाषा चिंतन भी न्यूनाधिक पाणिनीय है। हेमचंद्र ने कुछ चिंतन-मौलिकता दिखाई है। और विद्वानों ने भी भाषादर्शन का स्वरूप विकसित किया किंतु सब संस्कृत भाषा के माध्यम से ही।

द्रविड भाषाओं में सर्वाधिक विशिष्ट भाषा चिंतन 'तोलकाप्पियम्' में मिलता है जिसकी रचना संभवतः ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुई थी। तेलुगु का प्रथम व्याकरण ग्रंथ 'आंध्र शब्द चिंतामणि' नन्नय भट्टार (ग्यारहवीं सदी) का है, कन्नड़ का नागवर्मा रचित व्याकरण

बारहवीं सदी का है और मलयालम का प्राचीनतम उपलब्ध व्याकरण चौदहवीं सदी का है – किंतु ये सब काव्य रचना शिक्षण ग्रंथ अधिक हैं व्याकरण कम।

वर्तमान काल में, पिछले 50 सालों में, भाषाविषयक चिंतन करने वाले अनेक भारतीय मनीषी दिखाई पड़े हैं। ये अधिकांश भारतीय चिंतन और पाश्चात्य चिंतन के तुलनात्मक अध्येता भी हैं और इन्होंने भारतीय चिंतन को दृढ़ता के साथ पाश्चात्य भाषा चिंतकों के समक्ष रखा है। इन विद्वानों में अग्रगण्य हैं – विद्यानिवास मिश्र, रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, वी.रा. जगन्नाथन, कपिलदेव द्विवेदी, सत्यकाम वर्मा, अनिल विद्यालंकार, कृष्णस्वामी आयंगार, न.वी. राजगोपालन, माणिकलाल चतुर्वेदी। पाठ्यक्रम में भारतीय भाषा चिंतन के पठन-पाठन को प्रतिष्ठित करने वाली प्रमुख संस्थाएँ हैं, केंद्रीय हिंदी संस्थान, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय। ये संस्थाएँ तथा विद्वान हिंदी के माध्यम से भारतीय भाषा चिंतन को समुन्नत कर रहे हैं, इनके प्रयास स्तुत्य हैं।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक

(1) संस्कृत में कारक संबंधी विवेचन की व्याख्या कीजिए।

2. टिप्पणियाँ

(1) वाक् की संकल्पना

(2) संस्कृत में क्रिया की संकल्पना

इकाई 3 भाषाविज्ञान की पाश्चात्य परंपरा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भाषाविज्ञान का सूत्रपात
3.3 तुलनात्मक भाषाविज्ञान
  3.3.1 भाषाओं का वर्गीकरण
  3.3.2 ध्वनि परिवर्तन और नियम
3.4 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
3.5 भाषा परिवर्तन
  3.4.1 ध्वनि परिवर्तन
  3.4.2 अर्थ परिवर्तन
  3.4.3 संरचना परिवर्तन
3.6 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

आधुनिक युग तक वैयाकरण अपनी अपनी भाषाओं का विशद, वैज्ञानिक अध्ययन करते रहे और पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' जैसे अत्यंत सुगठित व्याकरण ग्रंथों की रचना हुई। आधुनिक युग में विभिन्न भाषाओं के ज्ञान के साथ उनकी तुलना करने की जिज्ञासा पैदा हुई जिससे उनकी संबद्धता का विश्लेषण किया जा सके। इससे भाषाओं के इतिहास को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई जिससे भाषा में हुए परिवर्तनों को समझा जा सके। फिर विद्वान भाषाओं की रचना के विश्लेषण की ओर बढ़े, जिससे विश्व की भाषाओं के अध्ययन का एक वैज्ञानिक ढाँचा तैयार किया जा सके।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- आधुनिक युग में भाषा अध्ययन के प्रति उन्मुखता का विवरण दे सकेंगे,
- तुलनात्मक भाषाविज्ञान की संक्षिप्त रूपरेखा दे सकेंगे,
- भाषाओं के वर्गीकरण का आधार समझा सकेंगे,
- ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का परिचय दे सकेंगे,
- भाषा में हुए परिवर्तनों की दिशा और कारण बता सकेंगे, और
- संरचनात्मक भाषाविज्ञान की ओर प्रस्थान का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग वैज्ञानिक अध्ययन का युग है। पूर्व युग में चिंतकों और विचाराकें ने विविध विषयों पर चिंतन-मनन किया। आधुनिक युग में ही समाजविज्ञान, इतिहास, मनोविज्ञान आदि विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों की नींव पड़ी, जिससे विशेषज्ञता के अनुरूप विषय का विधि विज्ञान तैयार किया जा सके। इसी सिलसिले में भाषाओं के अध्ययन के लिए भाषाविज्ञान का निर्माण हुआ।

वैसे तो भाषाओं की रचना और प्रकार्यों में चिंतकों की रुचि आदि काल से रही है, लेकिन उस समय उनका ध्यान एक ही भाषा तथा उसके मानक रूप पर ही रहा। भाषा मात्र के अध्ययन के लिए, विशेषकर भाषाओं के अध्ययन के लिए एक संरचनात्मक ढाँचे के निर्माण

के लिए प्रयास आधुनिक काल की ही देन है। इसी अर्थ में भाषाविज्ञान व्याकरण की तुलना में एक व्यवस्थित अध्ययन क्षेत्र (discipline) है। यों कह सकते हैं कि भाषाविज्ञान भाषाओं के अध्ययन और वर्णन के लिए एक व्यवस्थित आधार देता है, जिससे संसार की भाषाओं का समान रूप से व्याकरण तैयार किया जा सके। अब भाषावैज्ञानिकों का यह यत्न है कि संसार की भाषाओं के लिए सार्वभौम व्याकरण की रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके, क्योंकि भाषा मानव मन की क्षमता है ओर मन के विचार सभी भाषाओं में संरचना के स्तर पर समान ढंग से व्यक्त होते हैं।

आधुनिक युग में विश्व स्तर पर विभिन्न समाजों के एक दूसरे के संपर्क में आने पर एक दूसरे की भाषाओं में रुचि बढ़ी, परिचय बढ़ा। प्रारंभ में यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत के अध्ययन के आधार पर अनुभव किया कि संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं में ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य रचना आदि कई भाषिक इकाइयों में कई समान तत्व हैं। विशद अध्ययनों के आधार पर ज्ञात हुआ कि ये सब भाषाएँ एक परिवार की हैं, भगिनी भाषाएँ हैं। भाषाविज्ञान का सूत्रपात हो चुका था। विद्वानों में विश्व की भाषाओं के साम्य तथा संबद्धता के प्रति रुचि जागी और भाषाओं की तुलना के आधार पर भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का कार्य तेज़ी से बढ़ा।

एक परिवार की भाषाओं में आंतरिक परिवर्तनों के कारण अलगाव शुरू होता है और परिवर्तन की निरंतर प्रक्रिया के कारण वे एक-दूसरी से दूर होती जाती है। हिंदी /पैर/, ईरानी /पात्र/, अंग्रेज़ी foot, संस्कृत /पाद/ संबद्ध शब्द हैं। इस अंतर को हम हर भाषा के ऐतिहासिक विकास में देख सकते हैं जैसे :

संस्कृत – कर्म→प्राकृत – कम्म→हिंदी – काम

भाषा के वर्तमान रूप के वर्णन में स्वाभाविक ही था उसका ऐतिहासिक विकास क्रम को जाना जाए। इसी जिज्ञासा ने ऐतिहासिक भाषाविज्ञान को जन्म दिया।

3.2 भाषाविज्ञान का सूत्रपात

हम यह कह सकते हैं कि भाषा मात्र के अध्ययन के लिए एक विज्ञान के रूप में भाषाविज्ञान का आविर्भाव आधुनिक काल में ही हुआ – विशेषकर 19वीं सदी में। पूर्व युगों में विद्वानों ने व्याकरण लिखा तो किसी एक भाषा का। उस समय उनका एक से अधिक भाषाओं से वास्ता भी शायद नहीं पड़ता था। अध्ययन के क्षेत्र में केवल पुरानी (Classical) भाषाओं की ही आवश्यकता होती थी, अतः बोलचाल की भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता नहीं थी। आधुनिक युग में दो नई बातें सामने आईं। एक ओर, देशों या समुदायों का एक दूसरे से संपर्क बढ़ा और भाषाएँ जानने के अवसर बढ़े और सीखने की आवश्यकता बढ़ी। दो, आधुनिक युग में बोलचाल की भाषाओं को पुरानी भाषाओं से अधिक महत्व मिला और उनके व्याकरण लिखने की आवश्यकता हुई। लेकिन आधुनिक भाषाओं के व्याकरण लिखने की कोई परंपरा न होने के कारण पुरानी भाषाओं के व्याकरण को ही आधार बनाया गया। पहली बात से तुलनात्मक और उसी आधार पर ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का प्रारंभ हुआ। दूसरी बात से वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ।

कलकत्ता जब भारत की राजधानी थी, वहाँ के उच्चतम न्यायालय में 1783 सर विलियम जोन्स (1746-94) नामक जज नियुक्त हुए थे। उन्होंने भारतीय न्याय व्यवस्था के बारे में अधिक जानकारी के उद्देश्य से बड़ी कठिनाइयों का और पंडितों के विरोध का सामना करते हुए संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। यह अध्ययन भाषाविज्ञान के सूत्रपात का आधार बना।

उन्होंने देखा कि संस्कृत, लैटिन और ग्रीक भाषाओं में ध्वनि, शब्दावली और रूपरचना की दृष्टि से बहुत साम्य है, जिसके संदर्भ में यही सोचा जा सकता है कि ये तीनों भाषाएँ किसी-न-किसी रूप में संबंधित हैं। 1786 में वे कहते हैं – 'सुदृढ़ समानता धातु मूलों और व्याकरणिक रूपों में समानता इतनी अधिक है कि उसे मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता। यह समानता इतनी गहरी है कि उनका अध्ययन करने से पहले उन तीनों को किसी एक मूल भाषा से उत्पन्न मानने को मजबूर करती है, जो अब विद्यमान नहीं है।' जोन्स की इस उक्ति से भाषा तुलना के अध्ययन की नींव पड़ चुकी थी। अगली, यानी 19वीं शताब्दी में तुलनात्मक अध्ययन ने जोर पकड़ा और विद्वानों ने संसार की समस्त भाषाओं का अध्ययन कर उन्हें अलग-अलग भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया।

3.3 तुलनात्मक भाषाविज्ञान

तुलनात्मक अध्ययन के दो आधार हो सकते हैं। हम किसी एक भाषा के ऐतिहासिक विकास से भाषा में हुए परिवर्तनों को समझ सकते हैं। जैसे, हिंदी में 'सत्य' से 'सच्च' और 'सच' बना। इससे अनुमान कर सकते हैं कि /त्य/ का समीकरण और तालव्यीकरण की प्रक्रिया से /च्च/ में परिवर्तन होता है। अगर यह अनुमान सही है तो हमें अन्य शब्दों में भी इसी प्रकार के परिवर्तन दिखाई देने चाहिए। हिंदी में इस परिवर्तन के जयादा परिचित अन्य उदाहरण तो नहीं मिलते, हाँ /त/ वर्ग की अन्य ध्वनियों में इसकी पुष्टि मिलती है। जैसे :

अद्य → आज संध्या → संझा/साँझ विद्युत – बिजली

भाषा के आंतरिक परिवर्तन के अध्ययन के लिए लिखित आधार की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न कालों में उस भाषा के रूपों के अध्ययन से हम परिवर्तन की दिशाओं को समझ सकते हैं। इसी अध्ययन को ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की संज्ञा दी जाती है। हम तुलनात्मक भाषाविज्ञान की चर्चा के बाद इस इकाई में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की चर्चा आगे करेंगे।

तुलनात्मक अध्ययन का आधार दो भाषाओं में ध्वनि, रूप आदि स्तरों पर संबद्धता (correspondence) है। हिंदी और पंजाबी के मिलते-जुलते शब्द देखिए :

हिंदी	पंजाबी	हिंदी	पंजाबी
सात	सत्त	पाँच	पंज
काम	कम्म		
हाथ	हथ		

ऐतिहासिक रूप से हम जानते हैं कि सप्त – सत्त – सात के विकास क्रम में पंजाबी ने बीच के विकास को अपना लिया और हिंदी ने आगे परिवर्तन जारी रखा। अन्य उदाहरण भी इस बात की पुष्टि करते हैं। शब्दों की इस संबद्धता से हमें अध्ययन की गई दिशाएँ मिलती हैं। संबद्धता उन्हीं भाषाओं में मिलती हैं, जो एक ही परिवार की हों और जिनका विकास क्रम एक हो। अलग परिवारों की भाषाओं में मिलते-जुलते शब्द तो मिल जाते हैं, लेकिन ये इक्के-दुक्के होते हैं। अध्ययन का दूसरा आयाम यह है कि ध्वनि परिवर्तन की दिशा या क्रम की भी सूत्रता मिलती है, जो उन भाषाओं के ऐतिहासिक विकास को समझने में सहायक होती है। इस अध्ययन को हम तुलनात्मक भाषाविज्ञान की संज्ञा देते हैं।

3.3.1 भाषाओं का वर्गीकरण

पारिवारिक वर्गीकरण

भारत में कई भाषाएँ हैं। उत्तर में हिंदी, बांगला, पंजाबी, गुजराती आदि, दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि पूर्व में खासी, मणिपुरी आदि। गहन अध्ययन के बाद भाषावैज्ञानिक इन्हें चार भाषा परिवारों में बाँटते हैं। इसे निम्नलिखित आरेख से समझ सकते हैं :

1. भारोपीय परिवार
   - यूरोपियन भाषाएँ
   - भारत–ईरानी
     - ईरानी वर्ग
     - दरद (कश्मीरी)
     - भारतीय आर्य भाषाएँ (हिंदी, गुजराती, नेपाली आदि)

2. द्रविड भाषा परिवार
   - उत्तरी शाखा – कुड़ख, गोंडी आदि
   - मध्य शाखा – तेलुगु
   - दक्षिणी शाखा – तमिल, कन्नड, मलयालम, तुकु, कोडगु आदि

3. आस्ट्रिक परिवार – खासी, मुंडा भाषाएँ (संताली, खड़िया, हो, मुंडारी आदि)

4. चीनी-तिब्बती परिवार – मिज़ो, नागा भाषाएँ, मणिपुरी, नेवारी आदि।

अब सवाल यह है कि भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार क्या है? हम परिवार की शाखाओं, उपशाखाओं की पहचान कैसे करते हैं? एक परिवार की भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से विकसित होती हैं और विभिन्न परिवर्तनों के कारण उस परिवार की भाषाओं में भेद बढ़ते जाते हैं। फिर भी उनमें मूल तत्व सुरक्षित रहते हैं, जिन्हें हम तुलना से पहचान पाते हैं। निम्नलिखित मूल तत्व प्रायः समान होते हैं :

(i) आधारभूत शब्दावली (हाथ, संख्या 2 आदि, जल, चंद्र आदि)

(ii) ध्वनियाँ (अ, आ, क, ख आदि), ध्वनि की संबद्धता

(iii) लिपि

(iv) रूप (बहुवचन प्रत्यय, भूतकाल का प्रत्यय आदि)

(v) परसर्ग (को, में आदि) तथा प्रकार्यात्मक शब्द (और आदि)

भिन्न परिवारों की भाषाओं में इन तत्वों में लगभग कोई समानता नहीं मिलती। एक परिवार की भिन्न शाखाओं में समान तत्व या संबद्धता के स्थल कम होते हैं।

विस्तृत अध्ययनों के आधार पर भाषावैज्ञानिकों ने विश्व की भाषाओं को दस प्रमुख परिवारों में बाँटा है। ये हैं :

1. भारोपीय परिवार (हिंदी, अंग्रेज़ी, रूसी, संस्कृत आदि)
2. द्रविड परिवार (तमिल, तेलुगु आदि)
3. चीनी-तिब्बती (चीनी भाषा)
4. मलय-पालिनेशियन (मलय भाषा, भारत की आस्ट्रिक भाषाएँ)
5. सामी-हामी (अरबी, हीब्रू, उत्तर अफ्रीकी भाषाएँ)
6. दक्षिण अफ्रीकी (बांटू आदि)
7. जापानी-कोरियन
8. यूरल-अलटाइक (तुर्की, हंगेरी, फ़िनिश)
9. अमेरिकी भाषाएँ (एस्किमो, एज़टेक आदि)

इस वर्गीकरण में कई मतभेद हैं और कई भाषाओं के बारे में अब भी कोई निश्चित मत नहीं है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण

हमने उल्लेख किया था कि एक परिवार की भाषाओं में रचना के समान तत्व मिलते हैं। भिन्न तत्व ही भिन्न परिवार सूचित करते हैं। इसी संदर्भ में हम भाषाओं को संरचना के आधार पर वर्गीकृत करते हैं, जिसे आकृतिमूलक वर्गीकरण कहा जाता है। आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार भाषा परिवारों की संकल्पना है। निम्नलिखित आरेख में इस वर्गीकरण की झलक मिल सकती है।

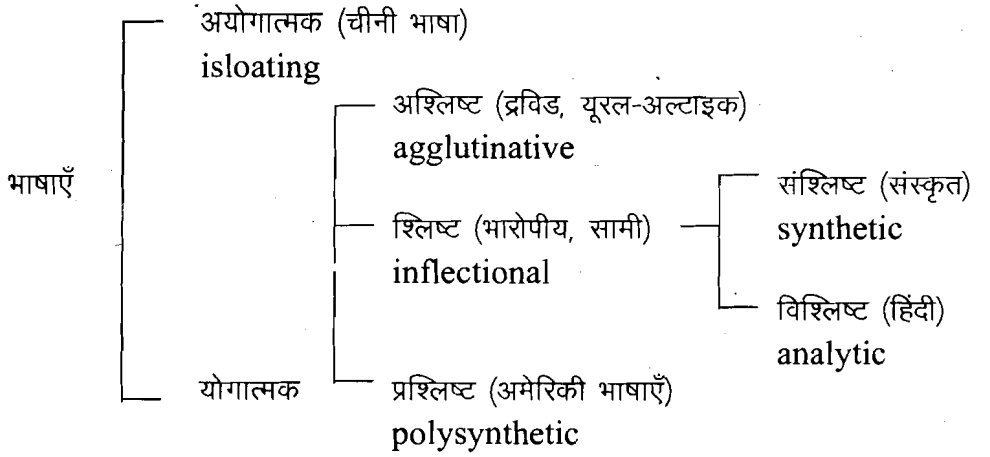

आकृतिमूलक वर्गीकरण

इससे आप जान सकते हैं कि एक परिवार की भाषा की आकृति की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो उस परिवार की सभी भाषाओं में दिखाई देती हैं।

3.3.2 ध्वनि परिवर्तन और नियम

भारोपीय परिवार की भाषाओं में ध्वनियों की संबद्धता पर अध्ययन में भाषावैज्ञानिकों की रुचि बढ़ी। उन्होंने अनुभव किया कि कुछ ध्वनि परिवर्तन बड़े ही व्यवस्थित ढंग से विश्लेषित किये जा सकते हैं। उदहारण के लिए संस्कृत के व्यंजन और अंग्रेज़ी के व्यंजनों में नियमित रूप से बदलते हैं। जैसे :

		संस्कृत		अंग्रेजी
महाप्राण से अल्पप्राण	भ	भ्राता	ब	brother
	ध	बंध	t	bind
घोष से अघोष	द	दंत	t	teeth
	ग	ज्ञान	क	know
स्पर्श से संघर्षी	त	माता		mother
	प	पिता	f	father

ऐसी ही संबद्धताओं को ध्यान में रखते हुए ग्रिम नामक जर्मन भाषावैज्ञानिक ने घोषित किया कि किस तरह एक भाषा की ध्वनियाँ दूसरी भाषाओं में बदल जाती हैं। उनके विचारों को ग्रिम नियम (Grimm's Law) की संज्ञा दी जाती है। इसे उन्होंने बड़े 'वैज्ञानिक' तथा रोचक ढंग से एक सरल आरेख के रूप में प्रस्तुत किया।

अघोष
अल्पप्राण

घोष
अल्पप्राण

घोष
महाप्राण

(नोट : यहाँ संघर्षी को महाप्राण का ही दूसरा रूप गिना गया है।)

नियम की घोषणा के साथ ही विद्वानों ने अपवादों की सूची देना शुरू कर दिया। हम देखते हैं कि /बंध/bind, /दुहिता/daughter के प्रारंभिक व्यंजन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ऐसे अपवादों के विराकरण के लिए अतिरिक्त नियम बनाए जाते रहे। 19वीं शताब्दी में भाषावैज्ञानिकों ने नियमों को ढूँढ़ने और माँजने में बड़ा परिश्रम किया।

इसी शृंखला में वेर्नर नामक जर्मन भाषावैज्ञानिक ने अपवादों के स्पष्टीकरण स्वरूप अन्य नियम बनाए जिन्हें वेर्नर नियम की संज्ञा दी जाती है। फिर भी वे सारे ध्वनि परिवर्तनों के लिए समाधान नहीं दे पाए। विद्वानों ने अनुभव किया कि भाषा नियमों से बँधकर नहीं चलती। नियम शब्द से ही लोग असंतुष्ट हो गए। दूसरी तरह कुछ भाषावैज्ञानिकों ने 'नियम' की संभावना से आश्वस्त थे। वेर्नर ने जब किन्हीं प्रमुख अपवादों का समाधान प्रस्तुत किया तो इससे नियमों में विद्वानों आस्था बढ़ी। उन्होंने घोषणा की कि ध्वनि संबंधी नियम अपवाद रहित हैं। अन्य विद्वानों ने व्यंग्य में उन्हें 'नव्य वैयाकरण' (neogrammarians) की संज्ञा दी और उनकी खिल्ली उड़ाई।

इसी खींचातानी में तुलनात्मक भाषा।वैज्ञान इतिश्री हो गई। लेकिन तुलनात्मक अध्ययन के सिलसिले में विद्वानों ने बहुत-सी भाषाओं के आंतरिक ध्वनि परिवर्तनों के ऐतिहासिक क्रम संबंधी विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली थी। सहज ही, वे प्रस्तुत सामग्री के आधार पर भाषाओं के ऐतिहासिक विकास, ध्वनि, अर्थ आदि में परिवर्तन तथा परिवर्तन के कारण आदि में रुचि लेने लगे। इससे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का श्रीगणेश हुआ।

3.4 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के प्रादुर्भाव का आधार है भाषा में होने वाले परिवर्तनों का एहसास। कालक्रम के साथ भाषा के स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता है, जिसकी तुलना नदी के प्रवाह के साथ की जाती है। नदी का अस्तित्व नित्य है, लेकिन उसकी स्थिति और स्वरूप में बराबर परिवर्तन होता है। भाषा के संदर्भ में 'सरित प्रवाह', 'बहता नीर' आदि उक्तियाँ इसी का इंगित करती हैं। परिवर्तन के वैज्ञानिक विश्लेषण तथा विवरण से भाषा के इतिहास (यानी क्रमिक विकास) का ज्ञान मिलता है। इस तरह भाषा में परिवर्तनों का अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का सबसे प्रमुख लक्ष्य है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान वैसे तो एक ही भाषा के इतिहास और उसमें हुए परिवर्तनों का अध्ययन करता है। इससे मिले तथ्यों का तुलनात्मक भाषाविज्ञान में फिर उपयोग किया जाता है। इस तरह बाद में दोनों मिलकर समान लक्ष्य की खोज में कार्य करते हैं। इस कारण दोनों को मिलाकर तुलनात्मक-ऐतिहासिक विश्लेषण नामक समन्वित अध्ययन का क्षेत्र विकसित किया गया।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान अपने में उपयोगी अध्ययन क्षेत्र है। विद्वानों ने इसके अनुप्रयोगों की परिकल्पना की और भाषा के मूल उत्स तक पहुँचने का प्रयास किया। हम जानते हैं कि संस्कृत, लैटिन, ग्रीक सगिनी भाषाएँ हैं। इस बात की भी संभावना की जा सकती है कि ये भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से परिवर्तनों के कारण अलग हुई हों। परिवार की सभी भाषाओं के इतिहास क्रम से हम संभवतः अनुमानित रूप से उस पूर्ववर्ती (कल्पित) भाषा का पुनर्निर्माण कर सकते हैं, जिसका कोई प्रमाण या ऐतिहासिक प्रलेख उपलब्ध नहीं है। इस अध्ययन की शाखा को पूर्वरूप निर्धारण (glottochhronology) की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के तौर पर भाषावैज्ञानिक भारोपीय परिवार के संदर्भ में किसी प्राक् भारोपीय भाषा (Proto-Indo European) की कल्पना करते हैं, उसके स्वरूप का निर्धारण करते हैं और उससे संस्कृत आदि भाषाओं के ऐतिहासिक क्रम का अनुमान करते हैं।

भाषा के पूर्व रूपों के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ने कई प्रविधियों का विकास भी किया है। शब्दावली सांख्यिकी (Lexicostatistics) इसी प्रकार का एक साधन है जो भाषाओं के अलग होने के समय को ठीक से बताने का दावा करता है। हम जानते हैं कि भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन कम ही होते हैं और शब्दों की तुलना से उन्हें ढूँढ़ा जा सकता है। इसी तरह भाषा के आधारभूत शब्दों में बहुत कम परिवर्तन होते हैं। ऐतिहासिक भाषावैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि हजार वर्ष में आधारभूत शब्दावली में लगभग 1.5% शब्द बदल सकते हैं। इस तरह दो भाषाओं की आधारभूत शब्दावली में अंतर के आधार पर उनके अलगाव की गणना की जा सकती है। यूरोपीय भाषाविदों ने गणना की है कि अंग्रेज़ी और जर्मन भाषाएँ पहले एक थीं और आज से लगभग 1600 साल पहले ई. 400 के आसपास अलग हुईं।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के और भी कई अनुप्रयोग हैं। न केवल हम भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास लिख सकते हैं, इस अध्ययन से प्राप्त सूचनाओं को शब्दकोश में समाविष्ट कर सकते हैं। भाषा का इतिहास पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन के लिए भी आवश्यक है।

भाषा परिवर्तन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का प्रमुख लक्ष्य है। हम भाषा परिवर्तनों के बारे में विस्तार से अगले प्रकरण में पढ़ेंगे।

3.5 भाषा परिवर्तन

भाषाएँ प्राणी की तरह जीवंत व्यवस्थाएँ हैं – जन्म लेती हैं, बढ़ती हैं, विकास करती हैं और अस्तित्वविहीन भी हो जाती हैं। जिस तरह जीवित प्राणी में परिवर्तन अवश्यंभावी है, भाषाओं में भी परिवर्तन सहज और स्वाभाविक हैं। जिस तरह शरीर के विभिन्न अंगों में परिवर्तन होते हैं, भाषा के विभिन्न तत्वों यथा ध्वनि, शब्दावली, शब्दार्थ, रूप, वाक्य संरचना आदि में परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के प्रकार और कारणों के बारे में आगे अध्ययन करेंगे।

3.5.1 ध्वनि परिवर्तन

ध्वनि परिभाषा के विकास का सबसे प्रमुख अभिलक्षण है। भाषा में नई ध्वनियाँ आ जाती हैं, पुरानी ध्वनियाँ खत्म हो जाती हैं, नये संयुक्ताक्षर बनते हैं या पुराने संयुक्ताक्षर टूटते हैं। भाषा के इतिहास से ही हमें इन परिवर्तनों के बारे में पता चलता है।

ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ निम्न प्रकार से हैं :

1) **संगम (Merger)** : इसमें दो ध्वनियाँ मिलकर एक हो जाती हैं। जैसे हिंदी में /श/ तथा /ष/ का उच्चारण एक हो गया है।

2) **विच्छेद (Split)** : इसमें एक ध्वनि परिवर्तन के कारण दो ध्वनियों में बदल जाती है। हिंदी /ड/ का विकास के कारण /ड/ तथा /ड़/ दो ध्वनियाँ अस्तित्व में आईं।

3) **आगम (Epenthesis)** : इसमें शब्द के आदि, मध्य या अंत में स्वर या व्यंजन का आगम होता हे। जैसे स्टेशन → इस्टेशन (हिंदी), शर्म → शरम, स्टेशन → सटेशन (पंजाबी), लिस्ट → लिस्टु (तेलुगु)।

4) **लोप (Loss)** : इसमें शब्द के आदि, मध्य या अंत में स्वर या व्यंजन का लोप हो जाना है। जैसे, अंग्रेजी कमान्ड → हिंदी कमान, अढ़ाई → ढाई, खरीददार → खरीदार।

5) **विपर्यय** (Transposition) : इसमें शब्द में आए दो स्वर या व्यंजन आपस में स्थान परिवर्तन कर लेते हैं। जैसे, लखनऊ → नखलऊ, पागल → पगला, यहाँ → ह्याँ (बोलियों में)।

6) **परिवेश पर आधारित ध्वनि परिवर्तन** : (क) समीकरण (assimilation) – विषय ध्वनियों का समान बनना। मकुट→मुकट, अष्ट→अट्ठ, (ख) विषमीकरण (dissimilation) – समान ध्वनियों का भिन्न (विषम) होना। काक - काग, कंकण - कंगन, (ग) तालव्यीकरण – कै→चेय् (हाथ - तेलुगु), (घ) घोषीकरण - शती→सदी, (ड.) महाप्राणीकरण - हस्त→हाथ, अष्ट→आठ, (च) दीर्घीकरण – सत्य→सच्च→साँच आदि।

ध्वनि परिवर्तन सिर्फ़ उच्चारण को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि भाषा की ध्वनि व्यवस्था में भी परिवर्तन लाता है। इस व्यवस्था परिवर्तन में एक से अधिक परिवर्तन की दिशाएँ काम करती हैं। उदाहरण के लिए पंजाबी भाषा से घोष महाप्राण ध्वनियों का लोप हुआ। स्वर मध्य में अल्पप्राणीकरण की प्रक्रिया आई। 'आधार' शब्द का उच्चारण /आदार/ हुआ [लिपि में परिवर्तन नहीं है, केवल उच्चारण में है]। शब्दारंभ में अघोषीकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है। घर का उच्चारण /खर/ हुआ। दोनों स्थितियों में महाप्राण के स्थान पर तान (tone) का आगम हुआ। इस तरह भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन नई व्यवस्थाओं को जन्म देता है।

ध्वनि परिवर्तन के कारण कई हैं। ध्वनि परिवर्तन के दो प्रमुख कारक तत्व हैं – सादृश्य (analogy) तथा प्रयत्न लाघव (मुखसुख) यानी उच्चारण की सहजता। अज्ञान, विदेशी भाषाओं की ध्वनियों का आगमन, विदेशी ध्वनियों के उच्चारण की अक्षमता आदि की ध्वनि परिवर्तन के अन्य कारण हैं।

3.5.2 अर्थ परिवर्तन

भाषा में शब्दों के अर्थ में निरंतर परिवर्तन होता है। इससे भाषा की शब्दावली (lexicon) में भी परिवर्तन आता रहता है। अर्थ परिवर्तन के कई कारण हैं। हम नई संकल्पनाओं के लिए पुराने प्रचलित शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। जैसे 'पैर' शब्द का उपयोग कई भाषाओं में फर्नीचर के पायों के लिए होता हे। यह सादृश्यमूलक अर्थ विस्तार है। लोगों या विचारों के प्रति हमारा दृष्टिकोण भी प्रमुख कारण है। 'पुंगव' एक युग में पंडित, ज्ञानी के अर्थ में प्रयुक्त होता था। लेकिन ढोंगी विद्वानों के लिए मज़ाक में इस शब्द का प्रयोग हुआ, तो पोंगा (ध्वनि परिवर्तित रूप) बाद में अविवेकी व्यक्ति के लिए भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। हम सामाजिक व्यवहार में अमंगलसूचक या अशोभनीय शब्दों का प्रयोग नहीं करते, उनकी जगह भिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'मरना' के लिए 'स्वर्ग सिधारना' उदात्तीकरण के कारण है। भय के कारण साँप को 'कीडा' कहना लघुता लाने का प्रयास है। इसके अन्य उदाहरण हैं विधवा होने पर 'सिंदूर पूछना' कहना या चेचक की बीमारी को 'शीतला' कहना। मल विसर्जन के लिए 'नित्य कर्म' या 'दिशा जाना' या 'शौच जाना' (शुचि-शुद्धता) शोभनीय तथा सभ्य अभिव्यक्ति के लिए है।

अर्थ परिवर्तन की तीन प्रमुख दिशाएँ हैं :

1) **अर्थ विस्तार** : इसमें शब्द के मूल अर्थ का विस्तार होता है और शब्द का अर्थ व्यापक संदर्भ में प्रयुक्त होता है। 'तेल' का मूल अर्थ था तिल से प्राप्त तैल। अब हम इसका प्रयोग सभी तेलों के लिए करते हैं। आज पेट्रोल भी 'तेल' कहा जाता है। इस तरह के अन्य शब्द देखिए (कोष्ठकों में क्रमशः मूल अर्थ और वर्तमान विस्तृत अर्थ दिये गये हैं) – कुशल (कुश लाने में होशियार व्यक्ति, हर काम मे

निपुण व्यक्ति), स्याही (काली स्याही, सब रंगों की स्याही), पशु (गोधन, सभी जानवर), प्रवीण (वीणा बजाने में कुशल, हर कार्य में कुशल)। भाषा के मुहावरेदार प्रयोग अर्थ विस्तार के ही उदाहरण हैं। अब हम कार्यालय के head की बात करते हैं। मंत्रालय के स्कंध, खिड़की का पल्ला, बैंक की शाखा आदि शब्द विस्तृत अर्थ में मुहावरेदार प्रयोग हैं। हम सहज ही ऐसे सैकड़ों शब्दों का निर्माण करते हैं।

2) **अर्थ संकोच** : इस प्रक्रिया में मूल अर्थ सिकुड़कर सीमित अर्थ देता है। संस्कृत में 'मृग' का अर्थ था प्राणी, जानवर। इसी अर्थ में हम सिंह को 'मृगराज' कहते हैं। आज यह अर्थ सीमित ढंग से केवल 'हिरन' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अंग्रेज़ी में meat खाद्य पदार्थ का अर्थ देता था, अब केवल 'मांस' का अर्थ देता हे। ऐसे अन्य कुछ उदहारण देखिए – धान (< धान्य) (अनाज, चावल की फ़सल)। अर्थ संकोच का एक प्रमुख कारण है। जब विदेशी भाषाओं से शब्द आते हैं, तो भाषा में दो पर्याय हो जाते हैं। उस स्थिति में उनमें अक्सर अर्थ बँट जाते हैं या संदर्भ अलग हो जाते हैं। अब हम डॉक्टर और वैद्य में अंतर करते हैं। 'दरिया' का मूल अर्थ 'नदी आदि जलाशय' था लेकिन आज इसे हम सिर्फ़ 'सागर' के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

3) **अर्थादेश** : इस शब्द का अर्थ है 'अर्थ बदल जाना'। संस्कृत में 'दुहिता' का अर्थ था 'गाय दुहने वाली'। अब यह 'पुत्री' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अक्सर शब्द का विपरीत अर्थ में भी प्रयोग होने लगता है। संस्कृत में असुर का अर्थ था 'देव', अब वह दानव का अर्थ देता है और सादृश्य के कारण उससे 'सुर' शब्द बना लिया गया है। 'राग' का अर्थ प्रेम है, बांगला में वह 'क्रोध' का अर्थ प्रकट करता है।

अर्थ के परिवर्तन को विद्वान अर्थोत्कर्ष (उत्कृष्ट अर्थ देना) और अर्थापकर्ष (निकृष्ट अर्थ देना) जैसी मूल्यपरक प्रक्रियाओं से भी व्यक्त करते हैं। संस्कृत में 'साहस' का अर्थ था 'अनाचार'। आज उसके अर्थ में उत्कर्ष हुआ है और 'साहस' एक गुण है। हिंदी में पोंगा, लुच्चा (< लुंचित व्यक्ति, मुनि) अर्थापकर्ष के उदाहरण हैं।

3.5.3 संरचना परिवर्तन

संरचना परिवर्तन में रूप, पदबंध, वाक्य संरचना आदि सभी व्याकरणिक इकाइयों में परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। संस्कृत में हिंदी तक के विकास क्रम में संज्ञा, क्रिया आदि की रूपावलियों में व्यापक परिवर्तन हुए। इस संदर्भ में आप हिंदी के विकास के बारे में एम एच. डी-6 के सातवें खंड में पढ़ चुके हैं।

आज भी भाषा में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहे हैं जिसके हम प्रत्यक्षदर्शी हैं। मुझे के स्थान पर 'मेरे को' का प्रयोग, 'मैंने कह दिया है/मैंने कह रखा है' के स्थान पर 'मैंने कहा हुआ है' आदि परिवर्तन के सूचक हैं। हिंदी में ही लगभग 100 साल पहले लेखक 'कहने नहीं पाया', 'करने वहीं सकता' का प्रयोग करते थे। आज 'कह नहीं पाया', 'कर नहीं सकता' परिवर्तन के उपरांत स्थिर हो चुके हैं।

3.6 सारांश

आधुनिक युग में भाषाविज्ञान के प्रादुर्भाव से पहले भाषिक अध्ययन का लक्ष्य था किसी भाषा का व्याकरणिक विश्लेषण। इस लक्ष्य की पूर्ति में भी पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' जैसे विख्याय व्याकरण ग्रंथ लिखे गए। पाणिनि, पंतजलि तथा यास्क जैसे व्याकरण ग्रंथ लिखे गए। पाणिनि, पंतजलि तथा यास्क जैसे व्याकरणों ने संस्कृत भाषा के संदर्भ में दार्शनिक चिंतन किया और अर्थ की सत्ता, वाक् आदि संकल्पनाओं पर विस्तृत चर्चा की। आधुनिक

काल तक ये कार्य भाषा विशेष तक ही सीमित रहे। आधुनिक युग में विश्व स्तर पर देश एक दूसरे के निकट आए और एक दूसरे की भाषाओं को जाना। भाषाओं की सम्बद्धता तथा परस्पर आदान-प्रदान को जानने की रुचि पैदा हुई। इस रुचि के कारण भाषाओं की तुलना का कार्य शुरू हुआ जिस हम तुलनात्मक भाषा विज्ञान कहते हैं। तुलनात्मक भाषाविज्ञान एक परिवार की भाषाओं में ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य आदि इकाइयों में सम्बद्धता ढूँढ़ने का यत्न करता है और उनमें अंतर के कारणों का पता लगाता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान की शुरुआत प्रारंभ में भारोपीय परिवार की भाषाओं के संदर्भ में हुई। लेकिन बाद में विश्व के अनेक भाषाओं की सम्बद्धता के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा का पारिवारिक वर्गीकरण तुलनात्मक अध्ययन का एक उपयोगी परिणाम सिद्ध हुआ। परिवारों की सम्बद्धता उनकी रचना या आकृति पर आधारित होता है। एक परिवार की भाषा में रचना की कई विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। इस तरह पारिवारिक वर्गीकरण से आगे भाषाओं के आकृतिमूलक वर्गीकरण की स्थापना हुई। हम आज भी सार्वभौम व्याकरणों की तलाश में भाषाओं की संरचनाओं के समान तत्व ढूँढ़ते हैं। एक परिवार की भाषाएँ किसी मूल रूप से विकसित होकर तब अलग होती हैं जब उनमें अंतर बढ़ता है। इस अंतर का प्रमुख कारण यह है कि भाषा निरंतर परिवर्तनशील होती है। आंतरिक और बाह्य कारणों से भाषा में परिवर्तन निरंतर होते हैं। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान का परिवर्तित रूप है जो भाषा के परिवर्तन के क्रम को भाषा के इतिहास के रूप में देखता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान भाषा के इतिहास क्रम को जानने के प्रयत्न में कुछ ऐसे उपादान भी ढूँढ़ता है जो भाषिक अध्ययन को वैज्ञानिक ढंग से खोज का क्षेत्र बनाता है। भाषाओं में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर यह भाषा परिवार के पूर्वरूप का अनुमान कर सकता है और उसका पुनर्निर्माण कर सकता है। इसी तरह परिवर्तन के अनुपात का अंदाज़ हो तो हम यह बता सकते हैं कि किस समय दो भाषाएँ अलग हुई होंगी। इस तरह ऐतिहासिक भाषाविज्ञान हमें भाषा के अध्ययन के अन्य आयाम देता है।

भाषा के वर्तमान स्वरूप के अध्ययन में भाषाविज्ञान की रुचि शताब्दी के आरंभ में जागी। भाषावैज्ञानिक यह जानना चाहते थे कि क्या एक सार्वभौम व्याकरण तैयार किया जा सकता है जो संसार की सभी भाषाओं के अध्ययन में सहायक हो। इस नई खोज की प्रवृत्ति के कारण ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में लोगों की रुचि घटी और संरचनात्मक भाषाविज्ञान अस्तित्व में आया। इसके बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रारंभ कैसे हुआ और उसका क्या योगदान है?

(2) ऐतिहासिक भाषाज्ञान का विषय क्षेत्र क्या है?

(3) विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाता है?

2. टिप्पणियाँ

(1) ध्वनि परिवर्तन, दिशाएँ और कारण

(2) अर्थ परिवर्तन, दिशाएँ और कारण

(3) भारत के भाषा परिवार

इकाई 4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 फर्दिनांद द सस्युर (1857-1913)
4.3 लियोनार्ड ब्लूमफ़ील्ड (1887-1949)
4.4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान में विश्लेषण की प्रक्रिया
4.5 टैग्मीमिक्स और सिस्टिमिक व्याकरण
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में 20वीं सदी के आरंभ में यूरोप तथा अमेरीका में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के आविर्भाव तथा व्यापक प्रसार की चर्चा की जा रही है। संरचनात्मक अध्ययन व्यवहारवादी मनोविज्ञान पर आधारित है, जो केवल प्रत्यक्ष व्यवहार की प्रक्रिया को अध्ययन की वस्तु मानता है और उसके पीछे निहित मानसिक आधार को नकारता है क्योंकि मन की बातों को हम नहीं जान सकते। यह भाषाविज्ञान भाषा के विश्लेषण का एक ढाँचा भी उपस्थित करता है जिससे हम संसार की विभिन्न भाषाओं का समान धरातल पर अध्ययन कर सकें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संरचनावाद को परिभाषित कर सकेंगे,
- प्रख्यात भाषावैज्ञानिक सस्युर तथा ब्लूमफ़ील्ड के विचारों की व्याख्या कर सकेंगे,
- संरचनात्मक भाषाविज्ञान के अभिलक्षण बता सकेंगे,
- संरचनात्मक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर अपनी भाषा का विश्लेषण कर सकेंगे,
- पाइक के टैग्मीमिक्स तथा हैलिडे के सिस्टिमिक व्याकरण की मान्यताओं का वर्णन कर सकेंगे, और
- भाषाशिक्षण आदि क्षेत्रों में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

हमने पिछली इकाइयों में पढ़ा कि आधुनिक युग में तुलनात्मक भाषाविज्ञान के कारण भाषाओं के परस्पर संबंध को समझने का आधार मिला। भाषाओं में अंतर के कारण ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का आविर्भाव हुआ। 20वीं सदी के साथ-साथ संरचनात्मक भाषाविज्ञान का उदय हुआ जिसके प्रवर्तक फ्रांस के भाषावैज्ञानिक सस्युर हैं और संरचनात्मक भाषाविज्ञान को विश्लेषण के तौर पर रूप देने वाले अमेरिकी भाषावैज्ञानिक ब्लूमफ़ील्ड हैं।

संरचनावाद आधुनिक युग में वैज्ञानिक अध्ययन का आधार माना जाता है। इस उपागम का प्रारंभ यूरोप में समाजविज्ञान के अध्ययन से शुरू हुआ। मनोविज्ञान का व्यवहारवाद इसका सहयोगी सिद्धांत है। इसके अनुसार जो प्रत्यक्षतः सामने हो उसी का विश्लेषण और वर्णन करना वैज्ञानिक दृष्टि है, अपनी ओर से उसमें व्याख्या के तौर पर कुछ नहीं जोड़ा जाना चाहिए। 19वीं शताब्दी में फ्रैन्ज़ बाओज़ (Franz Boas) तथा उनके शिष्य एडवर्ड सपीर ने

इसी दृष्टि से नृतत्त्वशास्त्र के अध्ययन की शुरुआत की और संस्कृतियों के अध्ययन के साथ सहज ही उनका ध्यान भाषा के अध्ययन पर गया।

एडवर्ड सपीर (1884-1939)

आपका जन्म यूरोप में हुआ और अपने माँ-बाप के साथ आप 1889 में अमेरिका में जा बसे। आप मूलतः नृतत्त्वविज्ञानी हैं और फ्रैन्ज़ बाओज़ के शिष्य रहे हैं। बाद में आपने नृतत्त्वविज्ञान के सिद्धांतों को भाषा के विश्लेषण पर लागू किया। नृतत्त्वविज्ञान के अध्ययन के संदर्भ में आपने अमेरिकी भाषाओं के बोलने वाले सहयोगियों के साथ संयुक्त रूप में कई अमेरिकी (Red Indian) भाषाओं का विश्लेषण किया और हर भाषा का व्याकरण और शब्दकोश तैयार किया।

1921 में आपने Language : An Introduction to the Study of Speech नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में स्वनिम तथा रूप स्वनिमिकी का समावेश किया और अपनी ओर से भाषा विश्लेषण का एक प्रदर्श (model) प्रस्तुत किया। लेकिन इस ग्रंथ की विशेषता इस बात में है कि आपने भाषा और संस्कृति के संबंध पर बल दिया तथा भाषा के रूप पक्ष (form) के वर्णन में सौंदर्य और सुघड़ता का समावेश किया।

आगे चलकर ब्लूमफ़ील्ड ने इस अध्ययन को रूप दिया। इसका अध्ययन आगे करेंगे।

4.2 फर्दिनांद द सस्युर (1857-1913)

सस्युर का जन्म 1857 मे जेनेवा में हुआ था। आपने अपने जीवन काल में कोई ग्रंथ नहीं लिखा था। उन्होंने जेनेवा विश्वविद्यालय में तीन सत्रों में सामान्य भाषाविज्ञान की कक्षाओं में जो व्याख्यान दिये, उन व्याख्यानों के क्लास नोट्स को उनके सहयोगियों और छात्रों ने संगृहीत किया और 1916 में, उनके निधन के बाद पुस्तकाकार प्रकाशित किया। उस ग्रंथ का नाम था Cours de linguistique général. शुरू में उनके ग्रंथ की पहुँच सीमित थी और उसका व्यापक असर भी नहीं हुआ। 1928 से लेकर उस ग्रंथ का अब तक अंग्रेज़ी सहित लगभग 12 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उस ग्रंथ ने भाषाविज्ञान के क्षेत्र में क्रांति सी ला दी। सस्युर को अपने योगदान के संदर्भ में संरचनावाद (structuralism) का जनक माना जाता है।

1. समकालिक भाषा अध्ययन की स्थापना

सस्युर के समय तक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अधिकतर ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पर ही काम हुआ था। (संदर्भ के लिए पिछली इकाई को देखें) लिखित भाषा के आधार पर भाषाओं में परिवर्तन, ध्वनि संरचना तथा रूप संरचना के आधार पर भाषाओं का अंतःसंबंध और पारिवारिक वर्गीकरण, बोलियों का अध्ययन आदि उस युग के अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र थे। दूसरी ओर, हमबोल्ट, स्टाइनटाल, वुन्ट आदि भाषावैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान का सहारा लेकर भाषा के सार्वभौम रूप की संकल्पना स्थापित की। इसी युग में सस्युर ने भाषाविज्ञान की नींव डाली।

अगर हम सस्युर को आधुनिक युग के प्रथम भाषा वैज्ञानिक कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उनसे पहले के भाषा वैज्ञानिक अधितर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में ही कार्य करते थे। ग्रिम और वर्नर के बाद नव वैयाकरणों का संप्रदाय ध्वनि परिवर्तन के नियमों तथा दो भाषाओं की संबद्धता को स्पष्ट करने में लगा था। विश्व की भाषाओं को पारिवारिक दृष्टि से वर्गीकृत करने की दिशा में काफी काम हुआ था। लेकिन भाषा के अध्ययन के लिए सैद्धांतिक आधार निश्चित करने का कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठा था।

19वीं शताब्दी में विवियम डवाइट हिवटने (1827-1894) ने इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण कार्य किया था।

सस्युर का जन्म पेरिस में हुआ था। आपका भाषा विज्ञान के साथ विविध स्तरों पर लंबे समय तक संपर्क रहा। उन्होंने जर्मन परिवार की भाषाएँ पढ़ायीं, तुलनात्मक व्याकरण तथा संस्कृत पढ़ायी और दस वर्ष तक (1881-1891) पेरिस के भाषाविज्ञान समाज के सचिव के पद पर रहे। इस अनुभव के साथ आपने पेरिस विश्वविद्यालय में 1906 से 1911 तक की अवधि में तीन वर्ष सामान्य भाषाविज्ञान नामक विषय पढ़ाया। विषय पढ़ाने के साथ-साथ ही आपने भाषाविज्ञान में मौलिक चिंतन के आधार पर कई नयी मान्यताओं की स्थापना की। उनके विचारों के साथ ही आधुनिक भाषाविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। सस्युर ने अपनी ओर से भाषाविज्ञान पर कोई ग्रंथ नहीं लिखा। कक्षाओं में उनके व्याख्यानों का सार ही मरणोपरांत 1915 में 'कोर्स इन जनरल लिंग्वसिटक्स' शीर्षक ग्रंथ के रूप में छपा।

सस्युर ने भाषा विज्ञान की मूल्य संकल्पनाओं के संदर्भ में कुछ वैपरीत्यों को प्रस्तुत किया। ये हैं :

1. भाषा (Language) बनाम वाक् (parole)
2. समकालिकता (Synchrony) तथा ऐतिहासिकता (Diachrony)
3. संरचनागत (Syntagmatic) तथा रूपावलीगता (Paradigmatic) संबंध
4. संकेतक (Signifier) तथा संकेतित (Signified)
5. घटक (Constituent) तथा संरचना (Construction)

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सस्युर की देन अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपने ग्रंथ में उन्होंने कई महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं। यहाँ हम उन्हीं नये सिद्धांतों की चर्चा करेंगे।

वे ग्रंथ के आरंभ में भाषा विज्ञान के अध्ययन के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए उसके व्यक्तिगत प्रयोग के पक्ष और अभिव्यक्ति के स्तर पर सामाजिक प्रयोग के पक्ष पर बल देते हैं। भाषा (Language) स्वतःपूर्ण व्यवस्था है। वह मनुष्य के वाक् व्यवहार (Lang age) का ही एक अंश है। भाषा वाक् व्यवहार की क्षमता से उत्पन्न सामाजिक वस्तु है, जिसमें समाज द्वारा व्यक्तियों के वाक् व्यहवार के लिए अपनायी गयी परंपराएँ भी जुड़ी हुई हैं। उच्चारण के स्तर पर, समझने के स्तर पर वाक् व्यवहार में अंतर रहने पर भी, समाज भाषा की रचना में सामाजिक मान्यता स्थापित करता है, जिससे सभी व्यक्तियों के लिए भाषा समान हो – समान विचारों के लिए समान प्रतीक व्यवस्था। यद्यपि वाक् व्यवहार व्यक्तिगत कौशल भी है और सामाजिक धरातल पर व्यवहृत व्यवस्था भी है, वह बहुआयामी, विविधरूपा है। उसमें हम भाषा की एकात्मकता (unity) के दर्शन नहीं कर सकते। वास्तव में अध्ययन की दृष्टि से वाक्-व्यवहार हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है – महत्वपूर्ण है भाषा की व्यवस्था स्थापित करने की मनुष्य की शक्ति। वही शक्ति या क्षमता भाषा की रचना में दिखायी पड़ती है। भाषाविज्ञान इस भाषिक रचना का ही अध्ययन करता है।

इसी संदर्भ में सस्युर वाक् (Parole) की संकल्पना को प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि भाषा का एक व्यक्तिगत पक्ष होता है और एक सामाजिक अनुबंधन का पक्ष, जिसके द्वारा समाज भाषा की व्यवस्था को कायम करता है, भाषा का प्रचालन (Execution) या उत्पादन व्यक्तिगत होता है। व्यक्ति ही भाषा का उत्पादन या अभिव्यक्ति करता है। अभिव्यक्ति सामूहिक नहीं हो सकती। सस्युर उसी व्यक्तिगत क्षमता को वाक् (Parole) कहते हैं। एक भाषा समुदाय के सारे व्यक्तियों के मन में अंकित व्यवस्था की सामूहिक राशि ही भाषा है। उस राशि से समाज के सदस्य वाक् व्यवहार के अर्जित कौशल द्वारा अपने मस्तिष्क में भाषिक व्यवस्था को अंकित करते हैं। किसी एक व्यक्ति में पूरी भाषा नहीं होती, क्योंकि

भाषा समाज की वस्तु है। इसकी तुलना में एक व्यक्तिगत क्षमता है – स्वैच्छिक तथा व्यक्तिगत प्रतिभा से पूरित। वाक् के अध्ययन में यही देखना होगा कि व्यक्ति किस तरह भाषिक व्यवस्था के आधार पर अपने विचारों को अभिव्यक्ति देता है।

भाषा, वाक् व्यवहार तथा वाक् को इस चर्चा के उपरांत सस्युर सार रूप में इन्हें निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत करते हैं :

1. भाषा वाक व्यवहार के विविध तथा व्यापक नमूनों के बीच से प्रकट सुनिश्चित व्यवस्था है। भाषा सामाजिक वस्तु है और व्यक्ति भाषा को बना या बदल नहीं सकता। व्यक्ति समाज में व्यवहार द्वारा भाषा को अर्जित करता है।
2. हम भाषा का ही अध्ययन कर सकते हैं, वाक व्यवहार का नहीं।
3. भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसमें अर्थ और ध्वनि-बिंबों का संयोजन है।
4. भाषा मूर्त है – इंद्रियगोचर वाक व्यवहार की तरह क्योंकि इसमें भाषिक प्रतीकों का अध्ययन होता है। ये प्रतीक भी अमूर्त नहीं हैं, बल्कि समाज ने यादृच्छिक रूप से इन्हें अर्थ प्रदान किया है। हम ध्वनि बिंबों को भी इसी तरह दृश्यमान बिंबों (लिखित भाषा) के रूप में मूर्त रूप से दिखा सकते हैं। इस कारण ही भाषा का अध्ययन करना हमारे लिए संभव होता है।

2. समकालिक (Synchronic) **तथा ऐतिहासिक** (Diachronic) **भाषाविज्ञान**

सस्युर ने ही सबसे पहले भाषा के समकालिक अध्ययन और ऐतिहासिक क्रम में परिवर्तन आदि को ध्यान में रखते हुए भाषाविज्ञान की दो विशिष्ट शाखाओं का प्रवर्तन किया। समकालिक अध्ययन के लिए उन्होंने भाषास्थिति (एक निश्चित तथा संक्षिप्त कालावधि) जिसमें भाषा को लगभग स्थायी मानकर अध्ययन किया जा सके) का सहारा लिया।

इकाई (Unit) : समकालिक भाषाविज्ञान में प्रतीकों तथा उनके संबंधों का अध्ययन किया जाता है। भाषिक प्रतीक उभयांगी हैं – हर प्रतीक का एक ध्वनि बिंब होता है और प्रत्यय (Concept) भाषा प्रतीकों की व्यवस्था (शृंखला आदि) ही भाषा है। हमें भाषा की इकाइयों को अलग करना होगा, जिससे भाषा का अध्ययन कर सकें। जैसे, उक्ति अपने में मात्र उच्चरित ध्वनियों की शृंखला है। लेकिन इन उच्चारण खंडों को कैसे पहचानें, अलग करें? हम सिर्फ़ भौतिक आधार पर ध्वनियों को अलग नहीं कर सकते। ध्वनियों को इकाइयों में खंडित करने के लिए अर्थ और प्रकार्य का सहारा लेना होगा। ध्वनियों के परिवेश के कारण हम उच्चारण की शृंखला में प्रकार्यात्मक खंडों को पहचान सकते हैं। इसी तरह उच्चारण खंड 'कर रहा हूँ' में हम 'खा रहा हूँ' की तुलना से 'कर', 'खा' को अलग कर सकते हैं। 'हा हूँ' अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि खाता हूँ की तुलना से हम जानते हैं कि 'हा हूँ' का भाषिक मूल्य नहीं है।

मूल्य (Value) : इसी चर्चा के उपरांत हम मूल्य की संकल्पना को ले सकते हैं। भाषा के दो पक्ष हैं – ध्वनि-बिंब तथा कथ्य। दोनों अविभाज्य हैं – एक सिक्के के दो पक्षों की तरह। दोनों के संयोजन से भाषिक 'रूप' बनता है। हर भाषिक रूप का अपने परिवेश में मूल्य होता है। हिंदी का बहुवचन संस्कृत बहुवचन के समान नहीं है। चूँकि संस्कृत में द्विवचन भी है, दोनों के मूल्यों में अंतर होगा। पूरी व्यवस्था के संदर्भ में ही मूल्य के तात्पर्य को समझा जा सकता है। सस्युर ने मूल्य को व्याख्यायित करते हुए एक महत्वपूर्ण सिद्धांत दिया जो परवर्ती संरचनात्मक भाषाविज्ञान का आधार बना। वह है व्यतिरेक। /त/ का उच्चारण वक्ता /t/ की तरह से करे तो भी उसका मूल्य वही होगा – स्वनिम /त/ का जो अन्य स्वनिम /ट/, /ल/ आदि के संदर्भ में प्रकार्यात्मक है। स्वनिम (Phoneme) की स्थापना करके सस्युर ने भाषा व्यवस्था के विश्लेषण के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने रूपिम (morpheme) का उल्लेख नहीं किया है, लेकिन रूप से लेकर वाक्य तक को

इकाइयों को उन्होंने प्रतीक (sign) के व्यापक संदर्भ में देखा था। "भाषा की प्रविधि" (Mechanisms of Language) "व्याकरण तथा उसके अंग" शीर्षक अध्यायों में उन्होंने समकालिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा की संरचना के अध्ययन का विस्तृत विधिविज्ञान प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान शीर्षक भाग में सस्युर ने भाषा परिवर्तन के सादृश्य आदि कारण, भाषा विभेद के भौगोलिक आधार, पूर्व भाषा (Proto type) तथा भाषा पुर्नगठन (Reconstruction) आदि संकल्पनाओं की चर्चा तो की ही है, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अध्ययन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण योगदान भी किया है। आपके अनुसार ध्वनिगत परिवर्तन मात्र उच्चारण में परिवर्तन नहीं है। मूल्य आदि पहले कही नयी मान्यताओं के संदर्भ में कह सकते हैं कि ध्वनि परिवर्तन भाषा की व्यवस्था या संरचना में परिवर्तन कर देता है।

संरचनात्मक एकात्मकता : जब हम 'बचपन' कहते हैं तो दो किन्हीं खंडों को साथ नहीं रखते, बल्कि एक बृहत् संरचना के दो घटकों को देखते हैं जहाँ दोनों का अर्थ एक दूसरे पर निर्भर है और कुल मिलाकर संरचना का एक अर्थ भी है। इसी को सस्युर संरचनात्मक एकात्मकता (Syntagmatic Solidarity) कहते हैं। इस तरह संरचना-घटक को एकात्मकता न केवल शब्दों में, बल्कि भाषा की समस्त संरचनाओं में देखी जा सकती है।

वे कुल मिलाकर भाषा को संरचनागत संबंधों और रूपावलीगत संबंधों के उत्पाद (Product) के रूप में देखते हैं। एक तरफ मस्तिष्क में विभिन्न संरचना प्रकार हैं और दूसरी तरफ संरचना के घटकों में वैकल्पिक रूप में आने वाले शब्द या रूपावलियाँ (Paradigms) हैं। हर स्थिति में व्यक्ति दोनों प्रकार के व्यतिरेकों के संदर्भ में सही संरचना और घटक तत्व चुनता है।

3. संरचनागत (Syntagnatic) तथा रूपावलीगत (Associative) संबंध

जब हम भाषा बोलते हैं तो ध्वनियों और शब्दों को एक शृंखला के रूप में उच्चारित करते हैं। यह एक संरचना (Syntagm) है। संरचना में दो या अधिक भाषिक रूप या इकाइयाँ होती हैं। 'समता' में 'सम', 'ता' दो रूप हैं, 'अच्छा लड़का' में दो शब्द हैं, "अगर तुम आ ओगे, तो हम साथ चलेंगे" में दो उपवाक्य हैं। ये तीनों अलग-अलग स्तरों पर संरचनाएँ हैं। संरचना में आने वाले हर घटक या इकाई का व्यतिरेक से मूल्य है। जैसे 'समता' में 'सम' का मूल्य परवर्ती 'ता' के व्यतिरेक के कारण है। साथ ही संरचना के घटकों का दूसरे घटकों से रूप संबंध भी होता है। जैसे समता से हम 'समत्व' 'समभाव' आदि शब्दों की बात सोच सकते हैं या 'ममता, लघुता' आदि की याद कर सकते हैं। इस तरह का संबंध शृंखला में नहीं होता, बल्कि मन में होता है। सस्युर रूपावलीगत के अंतर्गत सहसंबंध को भी लेते हैं और रूपावलीगत (Paradigmatic) संबंध को भी।

संरचनागत संबंध पूरी रचना के संदर्भ में है, जो उच्चरित वाक्य में प्रकट होता है। क्या उच्चारण के स्तर पर या वाक् व्यवहार के स्तर पर उच्चरित वाक्य में हम भाषा की रचना ढूँढ़ सकते हैं? इस संदर्भ में ही सस्युर ने भाषा की संरचनाओं के प्रकारों (types) की चर्चा की है। हम उच्चरित वाक्यों को भाषा के किन्हीं सीमित, पूर्व निर्धारित रचना-प्रकारों में देख सकते हैं। यही भाषा अध्ययन का विषय बनती है। वे प्रकारों से भिन्न वैयक्तिक उक्तियों के महत्व को भी स्वीकार करते हैं।

4. सस्युर के अनुसार भाषा प्रतीकों की व्यवस्था

हर प्रतीक के दो अंग होते हैं – ध्वनि-बिंब तथा अर्थ। भाषा एक सामाजिक संस्था है अर्थात् समाज इन प्रतीकों से वाक व्यवहार द्वारा संप्रेषण करता है। इन प्रतीकों के बारे में अध्ययन करने वाले विज्ञान को प्रतीक विज्ञान (Semiology) कहा जा सकता है। अगर हम

प्रतीकविज्ञान का आरंभ सस्युर से मानें तो गलत नहीं होगा। वे भाषाविज्ञान को प्रतीकविज्ञान के अंतर्गत रखते हैं। भाषाविज्ञान का संबंध समाजविज्ञान से है, प्रतीकविज्ञान का मनोविज्ञान से। लेकिन दोनों विज्ञान कुल मिलाकर अर्थ संप्रेषण की रचना तथा प्रक्रिया पर प्रकाश डालेंगे।

हम प्रतीकों की रचना के बारे में पढ़ेंगे, जिससे अर्थ के संबंध में सस्युर की मान्यताओं का परिचय मिल सके। प्रतीक मनोवैज्ञानिक वस्तु है जिसके दो अंग हैं – प्रत्यय (concept) या संकेतित (Signifier), ध्वनि-बिंब (Sound image) या संकेतक (Signified) वे इसे ध्वनियाँ नहीं, ध्वनि-बिंब कहते हैं, क्योंकि हम बिना उच्चारण ये भाषा में चिंतन करते हैं।

प्रतीक यादृच्छिक होता है। अर्थात् ध्वनि-बिंब और प्रत्यय का संबंध यादृच्छिक होता है। प्रत्यय से नया ध्वनि-बिंब अस्तितव में आ सकता है, ध्वनि-बिंब से नया प्रत्यय सूचित हो सकता है। सस्युर चूँकि पूरी भाषा को प्रतीकों को व्यवस्था कहते हैं, यादृच्छिकता का सिद्धांत समस्त भाषा के परिवर्तनों की व्याख्या में सहायक है। यादृच्छिकता का तात्पर्य व्यवहार में व्यक्ति की स्वच्छंदता नहीं है। यादृच्छिकता उस सामाजिक बंधन का ही दूसरा नाम है जिसेस भाषा सामाजिक वस्तु बनती है। जब कि भाषा में ऐसी यादृच्छिकता नहीं है, बल्कि तार्किक संगति और संगठित व्यवस्था है। इन दोनों के कारण ही भाषा में कई शताब्दियों तक भी अधिक परिवर्तन नहीं होता।

लेकिन जो परिवर्तन होता है, वह यादृच्छिकता के क्षेत्र में अधिक (स्पष्ट शब्दों में, भाषा की शब्दावली में अधिक) और व्यवस्था में कम होता है। इसका कारण यह है कि भाषा समुदाय सामाजिक स्तर पर भाषा को सुरक्षित रखने का कार्य करता है और पीढ़ी दर पीढ़ी उसे आगे बढ़ाता है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर हर भाषा समुदाय तार्किक दृष्टि से भाषा को हमेशा और व्यवस्थित करने का यत्न करता रहता है। इन दो प्रवृत्तियों के बीच भाषा धीरे-धीरे बदलती जाती है। लेकिन यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं हो सकता। समय की गति के साथ ही हो सकता है।

5. घटक तथा रचना के संबंध के बारे में हम ऊपर देख चुके हैं।

4.3 लियोनार्ड ब्लूमफ़ील्ड (1887-1949)

ब्लूमफ़ील्ड संरचनात्मक भाषाविज्ञान के प्रवर्तक हैं, जो भाषाविज्ञान के क्षेत्र में 1930 से 1960 तक स्थापित था। वे व्यवहारवादी (Behaviorist) हैं और भाषा को समाज का उत्पाद मानते हैं। भाषा के अध्ययन के लिए उन्होंने प्रेरणा (stimulus) और प्रतिक्रिया (response) को आधार बनाया और भाषा विश्लेषण के लिए मन के पक्ष यानी भाषा के आर्थिक पक्ष को अनुपयुक्त बताया। किसी भाषाई वस्तु का सही परिप्रेक्ष्य में वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त होना ही उसका वास्तव में अर्थ है। इसलिए उन्होंने भाषिक इकाइयों के अर्थ को विश्लेषण का आधार बनाना आवश्यक नहीं समझा।

ब्लूमफ़ील्ड उन अमेरिकी भाषावैज्ञानिकों की परंपरा में आते हैं जो नृतत्व विज्ञान (Anthropology) को नयी धारा के संदर्भ में अज्ञात संस्कृतियों तथा भाषाओं के अध्ययन के लिए एक नयी पद्धति की खोज में थे। मनोविज्ञान का व्यवहारवाद (Behaviourism) तथा दर्शन का प्रत्यक्षवाद (Empiricism) इस नये अध्ययन का आधार बना। जो प्रत्यक्षतः सामने है उसी को अध्ययन का आधार मानना तथा उसी के संदर्भ में वर्णन प्रस्तुत करना इस पद्धति का लक्ष्य है। इस मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार पर भाषाओं तथा समाज

विज्ञान आदि क्षेत्रों में अध्ययन की एक नयी शाखा खुली जिसे संरचनात्मक उपागम (Structuralistic approach) कह सकते हैं। संरचनात्मक अध्ययन प्रत्यक्ष तथ्यों का ही विश्लेषण करता है और प्राप्त सामग्री के आधार पर वर्णन प्रस्तुत करता है।

ब्लूमफ़ील्ड ने 1933 में भाषा (Language) नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। उनका भाषिक वर्णन उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार पर प्राप्त (प्रेक्षणीय) भाषिक तथ्यों को प्रस्तुत करता है। यह सिद्धांत पूर्ववर्ती भाषावैज्ञानिक चिंतन से एकदम भिन्न और नया है। इस कारण इस चिंतन का लगभग 25 वर्ष तक विकास हुआ। भाषा की रचना के संदर्भ में उन्होंने सस्युर से कई मान्यताएँ भी ग्रहण कीं।

ब्लूमफ़ील्ड का भाषा विश्लेषण इस आधार पर शुरू होता है कि भाषा मूलतः उच्चरित है। लिखित रूप भाषा नहीं है, बल्कि उच्चरित भाषा को दृश्य रूप प्रदान करने का एक तरीका है। अतः भाषाविज्ञान का अध्ययन उच्चरित भाषा का होगा। भाषा का मानक या सभ्य समाज में व्यवहृत रूप किन्हीं सामाजिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न स्थिति है। वही एकमात्र भाषा नहीं है। सामान्य परिस्थितियों में होने वाला कोई भी वाक् व्यापार भाषा के अध्ययन का विषय हो सकता है।

भाषा समाज में विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा एक सामाजिक व्यवहार है। यह व्यवहार अन्य व्यवहारों से भिन्न नहीं है। भाषा-इतर व्यवहार भी संप्रेषण में काम आते हैं। आपको प्यास लगी है। आप 'पानी चाहिए' कह सकते हैं या इशारा कर सकते हैं। श्रोता (या द्रष्टा) 'अभी देता हूँ' कह सकता है या बिना बोले पानी लाकर दे सकता है। इस तरह यह सामान्य व्यवहार है और इसका आधार भाषिक है या भाषेतर। हम व्यवहार के रूप में भाषा को देख सकते हैं और अध्ययन कर सकते हैं।

हमने इस बात की चर्चा की थी कि ब्लूमफ़ील्ड के अनुसार भाषा के अध्ययन के लिए मन में अंकित अर्थ को जानने की आवश्यकता नहीं क्योंकि हम नहीं जानते कि मन में क्या होता है। मन की प्रक्रिया हमारे निरीक्षण और विश्लेषण के बाहर की चीज़ है। लेकिन भाषा का व्यवहार हमारे लिए निरीक्षणीय वस्तु है, दृश्यमान या श्रव्यमान है। इसीलिए वे प्रत्यक्ष (उच्चरित) भाषा वस्तु को ही अपने अध्ययन का विषय मानते हैं।

सामान्य व्यवहार में दो घटनाएँ एक घटना क्रम में देखी जा सकती हैं। पानी के लिए इशारा करना पहली घटना या व्यापार है, दूसरे व्यक्ति का पानी ला देना प्रभावित व्यापार है। पहला व्यापार प्रेरण है, दूसरा प्रतिक्रिया। इसी तरह एक वाक्य व्यापार को देखिए :

क. आपका नाम क्या है?
ख. मेरा नाम ..... है।

इसमें पहली उक्ति प्रेरणा है दूसरी प्रतिक्रिया। दूसरे कथन से प्रभावित एक और उक्ति हो सकती है।

क. आपके नाम का अर्थ क्या है?

यहाँ दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया पहले व्यक्ति के लिए प्रेरणा बनी। इस तरह एक लंबा वार्तालाप प्रेरणा और प्रतिक्रिया की शृंखला के रूप में देखा जा सकता है :

प्रेरणा → प्रतिक्रिया
प्रेरणा → प्रतिक्रिया
प्रेरणा → प्रतिक्रिया आदि।

प्रेरणा की सहज प्रतिक्रिया ही उसका वास्तविक अर्थ है। जैसे "आपका नाम क्या है" का उत्तर "मेज़ पर एक किताब है" नहीं हो सकता। अर्थात् हम भाषा के अर्थ या प्रकार्य को सही अभिव्यक्तियों में ही देख सकते हैं। बालक सही स्थिति में सही प्रतिक्रिया को देखता है और भाषा सीखता है। इस व्यवहार को भाषावैज्ञानिक देखता है और भाषा का विश्लेषण करता है।

सामान्य व्यवहारों की तुलना में भाषा व्यवहार की कुछ विशेषताएँ हैं। यहाँ संकेत उच्चरित ध्वनियों से बने हैं। अर्थात् भाषावैज्ञानिक के लिए निरीक्षण योग्य वस्तु मात्र उच्चरित ध्वनियाँ हैं। ध्वनियाँ प्रेरणा नहीं है, बल्कि ध्वनियों से निर्मित उक्तियाँ संकेत व्यवस्था में सार्थक हैं। किस तरह ध्वनियों से अर्थ देने वाली उक्तियों का निर्माण होता है, यह देखना ही भाषा के अध्ययन का लक्ष्य है। प्राणी भी ध्वनियों से अर्थ (लेकिन उनके संकेतों और अर्थों में एक-एक का संबंध है) संप्रेषण करते हैं। ये संकेत सीमित होते हैं अतः अर्थ भी सीमित होते हैं। मनुष्य सीमित ध्वनियों से अत्यंत जटिल या अमूर्त विषय पर भी सूक्ष्मता से अर्थ की अभिव्यक्ति करता है। यह भाषा की जटिल व्यवस्था के कारण ही संभव है। यह व्यवस्था ही भाषा का विज्ञान है। न केवल मनुष्य भाषा का अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग करता है, बल्कि भाषा के अन्य कई अभिलक्षण हैं। भाषा वस्तु जगत से अलग होती है। भूख न हो तो भी व्यक्ति 'भूख लगी है' कहता है। इस कथन की भी सार्थकता है। भाषा संदर्भ से अलग होती है। आप सिर्फ एक श्रोता को ही नहीं, पूरे देश को संबोधित कर सकते हैं। भाषा वास्तविक व्यवहार से अलग हो सकती है। भाषा में चिंतन इसका उदाहरण है। कोई व्यक्ति बिना कार्य किये उसके पक्ष-विपक्ष पर विचार करके निर्णय कर सकता है। इस दृष्टि से भाषा न केवल व्यवस्था में जटिल है, बल्कि व्यवहार में बहुमुखी है।

भाषा सामाजिक वस्तु है। एक भाषा समुदाय के लोग विचारों के संप्रेषण के लिए एक भाषा का प्रयोग करते हैं। उस समुदाय के व्यक्ति उस भाषा का समान ज्ञान रखते हैं। अर्थात् सभी व्यक्ति समान ध्वनियों के द्वारा समान अर्थ का संप्रेषण करते हैं। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भाषा समुदाय का हर व्यक्ति उस भाषा का सही प्रतिनिधि होता है।

भाषा की परिभाषा तथा प्रकृति की इस महत्वपूर्ण तथा युग प्रवर्तक चर्चा के बाद ब्लूमफ़ील्ड का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान है भाषा की संरचना या व्यवस्था की चर्चा। उन्होंने ध्वनियों से लेकर वाक्य तक संरचना का एक अधिक्रम स्थापित किया जिसमें अधिक्रम के स्तर पर भाषिक रूपों से भाषिक संरचनाएँ निर्मित होती हैं। इसे हम उत्तराधिक्रमीय (Taxonomical) भाषाविज्ञान कह सकते हैं। ब्लूमफ़ील्ड ही इस संरचनात्मक भाषाविज्ञान के जनक हैं।

स्वन भाषा की आधार वस्तु है। इसका अध्ययन उच्चारण, हवा में प्रसरण या श्रवण के आधार पर होता है। लेकिन स्वन भाषा की रचना की इकाई नहीं है। रचना की इकाई स्वनिम है, जो दो शब्दों में भेदक इकाई है। इसी से भिन्न अर्थ वाले दो शब्द अलग से पहचाने जाते हैं। स्वनिमविज्ञान भाषा की संरचना के अध्ययन का एक पक्ष है जिसमें वाक स्वनों को स्वनिम नामक अर्थभेदक इकाइयों में व्यवस्थित किया जाता है।

लेकिन स्वनिम सार्थक इकाई नहीं है। भाषा की लघुतम सार्थक इकाई रूप है। रूपिम विज्ञान रूपों को पहचानने, वर्गीकृत करने तथा रूपों से शब्दों से निर्माण का अध्ययन करता है। वाक्य विज्ञान में शब्दों से पदबंध की रचना, पदबंधों से उपवाक्यों की रचना और उपवाक्यों से वाक्यों की रचना का अध्ययन किया जाता है। इस तरह स्वनिम विज्ञान, रूप तथा वाक्य विज्ञान कुल मिलाकर भाषा का व्याकरण कहे जाते हैं। इसे उत्तराधिक्रमीय व्याकरण या भाषावैज्ञानिक व्याकरण कह सकते हैं।

4.4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान में विश्लेषण की प्रक्रिया

हर भाषा में भाषिक रूप (Linguistic forms) होते हैं। ये भाषिक रूप अर्थभेदक इकाई स्वनिमों से निर्मित होते हैं। भाषिक रूप के उच्चारण द्वारा वक्ता श्रोता को किसी स्थिति में किसी विशिष्ट प्रकार की प्रतिक्रिया के लिए प्रेरित करता है। वह स्थिति या प्रसंग तथा वह प्रक्रिया – ये ही दोनों उक्त भाषिक रूप के भाषिक अर्थ (Linguistic meaning) हैं। दो भिन्न रचनाओं में समान प्रकार्य वाला अंश एक भाषिक रूप हैं, जैसे 'पढ़ा', 'देखा' में /आ/ है। वह एक भाषिक रूप है। वैसे कुछ भाषिक रूप (कपड़ा, लड़का) आदि किसी बृहत्तर रचना में हमेशा न आएँ, तो इन्हें रूप-वर्ग के सिद्धांत से पहचान सकते हैं। इस तरह हर भाषिक रूप को हम ऊपर के स्तर की रचना का घटक (Constituent) मान सकते हैं। इस अधिक्रम को हम निम्नलिखित आरेख द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं :

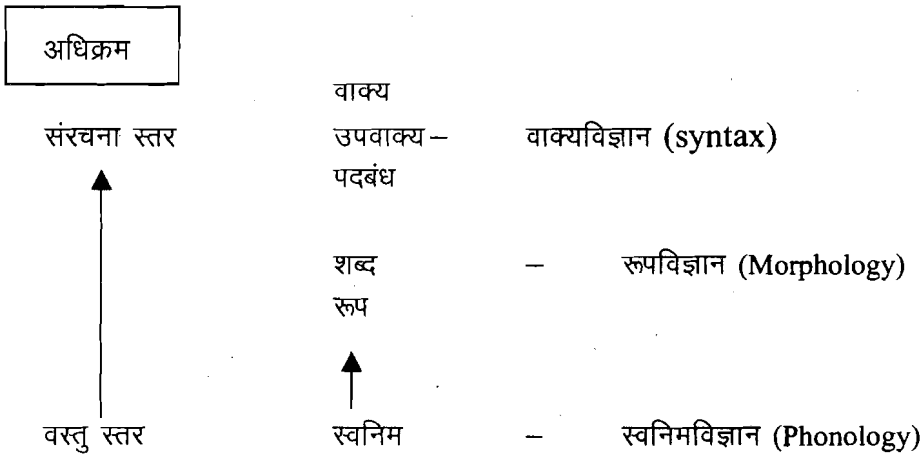

हर स्तर पर संरचना होती है। अर्थात् वाक्य एक या एक से अधिक उपवाक्यों से निर्मित होता है। यहाँ वाक्य संरचना है, उपवाक्य घटक। हर उपवाक्य एक या अधिक पदबंधों से निर्मित होता है। यहाँ उपवाक्य और पदबंध क्रमशः संरचना और घटक हैं। इसी तरह रूप से लेकर वाक्य तक संरचना का एक अधिक्रम है।

ब्लूमफ़ील्ड भाषिक, व्याकरणिक तथा शाब्दिक (Lexical) तीन स्तरों पर रूपों तथा उनके अर्थ को निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत करते हैं :

	भाषिक	**व्याकरणिक**	**शाब्दिक**
लघुतम अर्थ भेदक इकाई	फ़ोनीम	टैक्सीम	स्वनिम
अन्य सार्थक इकाई	ग्लासीम	टैग्मीम	रूपिम
(उसका अर्थ)	(नोईम)	(एपीसेमीम)	(सेमीम)
अन्य संरचित इकाइयाँ	भाषिक रूप	व्याकरणिक रूप	शाब्दिक रूप
(उनका अर्थ)	(भाषिक अर्थ)	(व्याकरणरिक अर्थ)	(शाब्दिक अर्थ)

भाषा की रचना में रूपों के संदर्भ में वे दो परिभाषाएँ प्रस्तुत करते हैं – व्याकरणिक प्रकार्य और रूप वर्ग। हर शाब्दिक इकाई की अपनी व्याकरणिक संरचना भी होती है। अर्थात् वाक्य में या किसी संरचना में उसका अपना व्याकरणिक प्रकार्य होता है। जैसे कोई संज्ञा शब्द वाक्य में कर्ता या कर्म के स्थान पर आता है। जो शाब्दिक रूप समान व्याकरणिक प्रकार्य रखते हैं, एक रूप-वर्ग (form class) में रखे जा सकते हैं। जैसे सारे सर्वनाम शब्द एक वर्ग में आएँगे और ये अन्य संज्ञा शब्दों के साथ मिलकर एक बृहत्तर वर्ग 'संज्ञादि' (Substantives) में आएँगे। हर रूप वर्ग का अपना वर्गार्थ (Class Meaning) होता है। परंपरात्मक व्याकरण इस वर्गार्थ से ही व्याकरण की व्याख्या करने का यत्न करते हैं। जैसे 'संज्ञा किसी व्यक्ति या स्थान या वस्तु का नाम है' आदि। लेकिन वर्गार्थ बहुत स्पष्ट रूप से

हमेशा बताया नहीं जा सकता। वर्गार्थ के साथ रचनाओं के प्रकार्य को भी जानना भाषा के सही विश्लेषण के लिए आवश्यक है।

प्रकार्य और रूप वर्ग की संकल्पनाओं के बाद वे स्थानापत्ति (Substitution) की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं। किसी रचना में कोई शाब्दिक या व्याकरणिक रूप दूसरे वर्गीय रूपों को स्थानापन्न करता है। जैसे 'राम काम करता है' में 'वह' आ सकता है। समान वर्गार्थ वाले शब्द स्थानपत्ति वर्ग में आते हैं। स्थानापत्ति से हम भाषा में विभिन्न रूपों को पहचान सकते हैं।

व्याकरणिक व्यवस्था शाब्दिक व्यवस्था के अतिरिक्त हैं। सिर्फ़ रूपों से हम वाक्य को कई व्याकरणिक विशेषताओं की सूचना देते हैं। ब्लूमफ़ील्ड व्याकरणिक संरचना में निम्नलिखित चार टैक्सीमों की कल्पना करते हैं। (1) क्रम (order) : किसी रचना में इकाइयाँ किस क्रम में आ सकती हैं और क्रम परिवर्तन से क्या अर्थ भेद होता है। अंग्रेज़ी वाक्य देखें – (John hit Bill, Bill hit John)। क्रम के कारण इनका अर्थ एकदम विपरीत हो जाता है। (2) अनुतान (Modulation) : हर उच्चारण के साथ अनुतान की विशेषता रहती है। जैसे : राम! (बुलाना) राम ..... (शक, शायद राम हो) राम। (उत्तर)। (3) संधि (Phonetic Modification) : हम बोलते समय रूपों को मिला देते हैं (जैसे कर – लिया → कल्लिया) या रूपों में ध्वनि परिवर्तन कर देते हैं। (उत्+तर → उत्तर), उद्+दंड → उद्दंड)। यह रूपों को पहचानने और विश्लेषित करने के लिए उपयोगी है। (4) चयन (Selection): यह व्याकरणिक इकाइयों में सबसे महत्वपूर्ण है। पूरी रचना का अर्थ इकाई के चयन के कारण बदल जाता है। जैसे (आप) किताब लाइए, (आपको) किताब चाहिए। यहाँ दोनों क्रियाओं में व्याकरणिक अंतर है, जिस कारण कर्ता, शब्द का उचित चयन करना पड़ता है। चयन की संकल्पना से जुड़ी हुई एक महत्वपूर्ण संकल्पना है सन्निकट घटकों की (Immediate Constituents)।

मैं	शाम	को	घर	जा	रहा	हूँ						
मैं	शाम	को	घर	जा	रहा	हूँ						
मैं	शाम	को	घर	जा	रहा	हूँ						
मैं	शाम	को	घर	जा	रहा	हूँ						
मैं	शाम	को	घर	जा	रहा	हूँ						
मैं	शाम	को	घर	जा	रहा	हूँ						

रचना स्तर पर हम चयन के सिद्धांत के आधार पर 'को घर', 'मैं शाम' आदि को एक संरचना नहीं मानते। सन्निकट घटक रचनाओं के विभिन्न स्तरों को पहचानने में हमारी मदद करता है। स्थानापत्ति और चयन दोनों घटकों के विश्लेषण में सहायक है।

ब्लूमफ़ील्ड मानते हैं कि भाषा की कोई भी रचना हो, व्याकरणिक इकाइयों के तथा शाब्दिक इकाइयों के विश्लेषण से हम भाषा की हर रचना का विश्लेषण कर सकते हैं। इसके लिए मन में अंकित (या उक्ति के मूल में विद्यमान) अर्थ को जानने की आवश्यकता नहीं (और यह संभव भी नहीं) बल्कि उक्ति के भाषाई, व्याकरणिक तथा शाब्दिक अर्थ तथा उक्ति की रचना से हम वाक्य का विशेषण कर सकते हैं। ब्लूमफ़ील्ड का भाषा की रचना के संदर्भ में सस्युर से विचार साम्य हैं। प्रमुख अंतर व्यवहारवादी सिद्धांत के कारण है, जहाँ ब्लूमफ़ील्ड उक्ति के अर्थ को भाषा के विश्लेषण से बाहर निकाल देने पर बल देते हैं। लेकिन ब्लूमफ़ील्ड का सिद्धांत अपने मनोवैज्ञानिक आधार के कारण नहीं, बल्कि भाषा की रचना के विश्लेषण की सूक्ष्मता और निश्चितता के कारण बहुत प्रचलित हुआ। उनकी

परंपरा में ज़ेलिग हैरिस, ग्लीसन आदि विद्वानों ने ब्लूमफ़ील्ड के सिद्धांत को अत्यंत वैज्ञानिक आधार पर बढ़ाकर संरचनात्मक भाषाविज्ञान की परंपरा स्थापित की।

4.5 टैग्मीमिक्स और सिस्टिमिक व्याकरण

ध्वनि से वाक्य तक के रचनागत अधिक्रम या ऊर्ध्वाधर क्रम (hierarchy) वाले व्याकरणों को taxonomic grammar कहा जाता है। इसी परंपरा में ब्लूमफ़ील्ड के व्याकरण में सुधार करते हुए दो और विद्वानों ने अपने ढंग से व्याकरण की रूपरेखा प्रस्तुत की।

टैग्मीमिक्स : अमेरिकी वैज्ञानिक केनेथ एल. पाइक (Kenneth L. Pike) ने टैग्मीमिक्स (Tagmemics) नामक उपागम का प्रवर्तन किया। उदाहरण के तौर पर जहाँ ब्लूमफ़ील्ड उपवाक्य को केवल पदबंध के घटकों में विभाजित करते हैं, पाइक पदबंधों को उस जगह आने वाले प्रकार्यात्मक शब्दों की सूची के साथ सूचित करते हैं। जैसे :

कर्ता : संज्ञा पदबंध + *कर्म* : संज्ञा पदबंध + *विधेय* : क्रिया पदबंध

इस तरह स्थान तथा उसमें आने वाले पद (या अन्य भाषिक इकाई) के योग को वे tagmeme कहते हैं। इसी कारण रचना तत्व को स्पष्ट करते हुए वे टैग्मीमीम को एक ओरख में दिखाते हैं जैसे :

Slot	Class	(हिंदी में)	स्थान	वर्ग
Role	Cohesion		प्रकार्य	संगति

स्थान का तात्पर्य है संरचना का वह स्थान जहाँ संरचना का घटक आता है जो संरचना का प्रकार्य सूचित करता है।

वर्ग उन इकाइयों का समूह है जो उस स्थान पर आता है, जैसे कर्ता (संज्ञा पदबंध) स्थान पर संज्ञा शब्द।

प्रकार्य उस घटक (जैसे कर्ता) की भूमिका की आर्थी सूचना देता है जैसे 'खाया' का कर्ता actor है, 'पाया' का कर्ता beneficiary (प्राप्तकर्ता) है।

संगति में अन्विति आदि वाक्यगत विशेषताएँ सूचित की जाती हैं।

पाइक भाषाविज्ञान को वाक्य विश्लेषण से व्यापक मानते हैं। उनके अनुसार भाषा विश्लेषण के तीन स्तर हैं – स्वनिमविज्ञान; व्याकरण, जो वाक्य से ऊपर की संरचनाओं (संवाद, भाषण, स्वगत भाषण, पाठांश, पैरा आदि) को भी विश्लेषण में शामिल करता है; और संदर्भ जिसमें परस्पर संप्रेषण, व्यंजित अर्थ, घटना क्रम, अस्मिता आदि कारक जुड़ जाते हैं।

सिस्टमिक व्याकरण (Systemic grammar)

यह भाषाविज्ञान की यूरोपीय शाखा की उपज है, जिसके प्रवर्तक हैलिडे (M.A.K. Halliday) हैं। इस शाखा के मूल स्रोत हैं फर्थ (J.R. Firth) जो भाषा को बहु-प्रकायार्त्मक व्यवस्था मानते हैं। हैलिडे मानते हैं कि भाषा के विश्लेषण में संदर्भ का महत्व है क्योंकि अर्थ संदर्भ का ही प्रकार्य है। इसलिए भाषा के अध्ययन में विविध संदर्भों का अध्ययन आवश्यक है और संदर्भों में भाषा के प्रकार्यों को भी अध्ययन का लक्ष्य बनाया जाना चाहिए। इस संदर्भ में वे अपने व्याकरण का सिस्टमिक – प्रकार्यात्मक व्याकरण भी कहते हैं। हैलिडे भाषाविज्ञान की यूरोपीय शाखा प्रकार्यात्मक व्याकरण (Functional Grammar) के भी स्तंभ हैं। 8

वे भाषा के तीन प्रमुख प्रकार्य मानते हैं :

(i) वैचारिक प्रकार्य (ideational function) : हम भाषा के माध्यम से वस्तुजगत का ज्ञान प्राप्त करते हैं। संरचना भी वास्तविकता को प्रतिबिंबित करती है। अभिकर्ता (agent), अधिकरण आदि कारक इसी वास्तविकता के सूचक हैं। यही भाषा का अनुभवगत/experiential) प्रकार्य भी हैं।

(ii) परस्परता का प्रकार्य (interpersonal fuction) : इससे भाषा के प्रयोग का संदर्भ सूचित होता है। हम उक्ति से सूचना भी दे सकते हैं, आदेश भी।

(iii) पाठगत प्रकार्य (fextnal fuction) : इसके अनुसार वाक्य संदेश संप्रेषण की संरचना है। हम नई सूचना दे रहे हैं या पूर्व सूचना को आधार बनाकर अपनी बात कहते हैं; हम किस बात पर बल दे रहे हैं आदि की चर्चा इसमें होती है।

रूप से वाक्य तक की संरचना का प्रारूप लगभग ब्लूमफ़ील्ड के विवेचन के समान है। हैलिडे मानते हैं कि हर वाक्य के विश्लेषण में उपर्युक्त तीनों प्रकार्यों का विवेचन होना चाहिए।

4.6 सारांश

संरचनात्मक भाषाविज्ञान (structural linguistics) भाषा के अधिक्रमीय (taxonomic) विश्लेषण का प्रमुख उपागम है। इसका लक्ष्य केवल वर्तमान में मौखिक रूप से प्रस्तुत भाषा का अध्ययन है, जो विश्लेषण के लिए न ऐतिहासिक साक्ष्य पर निर्भर है, न मानसिक रूप से निहित कारणों का सहारा लेता है। एक ही काल की भाषा के स्वरूप का अध्ययन करने के कारण इसे एककालिक या समकालिक (synchronic) भाषाविज्ञान कहा जाता है। भाषा का यथातथ्य वर्णन करने के लिए इस उपागम ने एक ढाँचा प्रस्तुत किया है। अपेक्षा की जाती है कि सारी भाषाओं का अध्ययन इसी अधिक्रमीय पद्धति से किया जाए। इसलिए इसे वर्णनात्मक भाषाविज्ञान (descriptive linguistics) भी कहा जाता है। इस पद्धति से लिखे गये भाषा के विश्लेषण को वर्णनात्मक व्याकरण (descriptive grammar) की संज्ञा दी जाती है।

संरचनात्मक भाषाविज्ञान का आविर्भाव सस्युर के ग्रंथ के प्रकाशन से माना जाना चाहिए – लगभग 1915 के आसपास। लेकिन यह 1933 में ब्लूमफ़ील्ड की पुस्तक 'भाषा' के प्रकाशन के साथ ही पूर्ण प्रकाश में आया। तब से लेकर लगभग 1965 तक संरचनात्मक भाषाविज्ञान का ज़ोर था। विश्व की कई भाषाओं का वर्णनात्मक व्याकरण लिखा गया। भाषा को आदत (व्यवहार) मानने तथा आदत द्वारा भाषा सीखने की मान्यता के कारण संरचनात्मक भाषाविज्ञान ने भाषा शिक्षण को भी बहुत प्रभावित किया।

अब हम संक्षेप में इसकी प्रमुख मान्यताओं और कार्यविधि की चर्चा करेंगे।

सस्युर की मान्यताएँ

1. वे संकेतिक अर्थ तथा शब्द (signifier) की इकाई को प्रतीक मानते हैं। भाषा का प्रकार्य प्रतीकों के माध्यम से अमूर्त अर्थ को मूर्त रूप देना है।

2. वे भाषा (Language) तथा वाक् (parole) में अंतर करते हैं। समाज में समस्त व्यक्ति भाषा बोलते हैं, जो वैयक्तिक अंतरों के बावजूद नियमबद्ध रूप में विश्लेषित की जा सकती है। लोगों की उक्तियाँ वाक् के उदाहरण हैं, जो वास्तविक घटना है। वाक् के आधार पर भाषावैज्ञानिक भाषा की व्यवस्था ढूँढ़ते हैं। वाक्य भाषा की इकाई है, उक्ति वाक् की।

3. वे ऐतिहासिक तथा समकालिक भाषाविज्ञान में संबंध देखते हैं।

4. भाषा की रचना के संदर्भ में वे अभिरचनात्मक (syntagmatic) तथा रूपावलीपरक (paradigmatic) संबंधों की चर्चा करते हैं।

ब्लूमफ़ील्ड की मान्यताएँ

1. ब्लूमफ़ील्ड व्यवहारवादी मनोविज्ञान से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार भाषा सामाजिक व्यवहार की वस्तु है। भाषा की उक्तियाँ सामाजिक व्यवहार की तरह वाक् व्यापार (speech events) हैं।

2. हर वाक् व्यापार को हम प्रेरण और प्रक्रिया की शृंखला के रूप में देख सकते हैं। प्रेरणा और प्रक्रिया भौतिक हो सकती है या वाचिक।

3. भाषा का बिश्लेषण उक्त व्यापारों के निरीक्षण तथा विश्लेषण के आधार पर हो सकता है। अध्ययन का क्षेत्र सिर्फ़ वाक् व्यापार है। उक्त विश्लेषण और भाषा के वर्णन की प्रक्रिया ही संरचनात्मक या वर्णनात्मक भाषाविज्ञान है।

4. वे वाक्य के अर्थ को सिर्फ इकाइयों की तुलना आदि के संदर्भ को महत्व देते हैं अर्थ का विश्लेषण नहीं करते। उनके अनुसार अर्थ मन में हैं, इस मन के कार्य को नहीं जानते। जो वाक् व्यापार प्रत्यक्षतः सामने है, उसी का अध्ययन हो सकता है। साथ ही, वे सस्यूर के सिद्धांत को मानते हैं।

संरचनात्मक भाषा विज्ञान के गुणधर्म

1. भाषा उच्चरित है। लेखन इसका विस्तार है।

2. भाषाविज्ञान वर्णनात्मक अध्ययन है, प्रमाण सिद्ध है। यह निर्देशात्मक अध्ययन नहीं।

3. भाषाविज्ञान भाषा मात्र का अध्ययन है। विश्लेषण की प्रविधि किसी भी भाषा के अध्ययन के लिए प्रारूप है।

4. भाषा का वर्णन समकालिक है। भाषा का हर वक्ता भाषा का प्रतिनिधि है। किसी एक वक्ता की भाषा का वर्णन भाषा का प्रतिनिधि वर्णन है।

5. भाषा एक व्यवस्था है। इसे वक्ता अभ्यास द्वारा अर्जित करते हैं।

6. भाषा विश्लेषण की प्रविधि की माँग है कि विश्लेषण स्वनों से वाक्य तक जाए।

7. व्यवस्था के रूप में सभी भाषाएँ समान हैं। लेकिन भाषा की व्यवस्था अपनी है।

भाषाओं में व्यवस्था का साम्य-वैषम्य है, लेकिन व्यवस्था की सार्वभौमिकता नहीं है।

संरचनात्मक भाषाविश्लेषण की प्रविधि

1. भाषाई इकाइयों या घटकों से संरचना का निर्माण होता है। इकाइयों से बनी अभिरचना में अभिरचनात्मक (syatapnetic) संबंध है, अभिरचना के स्थानों में इकाइयों में रूपावलिपरक (paradigmatic) संबंध हैं।

2. इकाइयों के वितरण की व्यवस्था निम्न प्रकार हैं :
   (क) एक अभिरचना में एक स्थान पर आने वाली इकाइयों में व्यतिरेकी वितरण है और इनसे भिन्न संरचनाएँ निस्पन्न होती हैं।
   (ख) एक इकाई के दो भिन्न रूप हों और उनसे अभिरचना में स्थान निश्चित (और भिन्न) हों तो यह परिपूरक वितरण (complementary distribution) है।
   (ग) एक इकाई के भिन्न रूप एक ही स्थान में आए और रचना न बदले तो वह मुक्त वितरण है।

3. संरचना के विभिन्न स्थानों में आने वाली इकाइयों को संरचना वर्गों में विभाजित किया जाता है, जैसे पदबंध स्तर पर संज्ञा पदबंध, क्रिया पदबंध आदि। इनके आपस के संबंधों तथा आंतरिक संरचना आदि का विश्लेषण उस रचना को स्पष्ट करता है। रचना के एक स्थान पर आने वाला इकाई के विभिन्न तत्व रूप वर्गों (form classes) में विभाजित किया जाता है। जैसे कर्ता में संज्ञा तथा सर्वनाम दो रूप वर्ग हैं। यहाँ चयन या स्थानापत्ति के आधार की चर्चा कुछ रचना के संदर्भ में की जाती है।

4. अपने उपागम के कारण संरचनात्मक भाषाविज्ञान अधिक्रमिक (taxonomic) है। भाषा की रचना स्तरित है। और हर स्तर की रचना ऊपर की स्तर की रचना construction के लिए संरचक या घटक है। रूप के घटक अर्थ स्तर पर कोई नहीं, वस्तु (substance) के स्तर पर स्वनिम हैं। वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है, यह किसी अन्य रचना का घटक नहीं है।

इस अधिक्रम को निम्नलिखित आरेख द्वारा समझ सकते हैं :

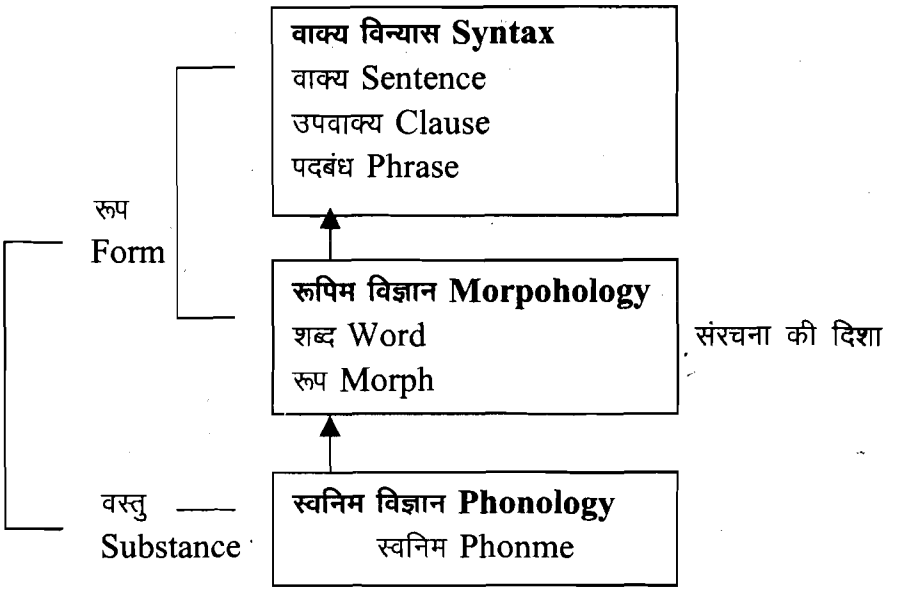

5. यद्यपि अधिक्रम के संदर्भ में हम स्वनिम से वाक्य तक जाते हैं, आधारभूत साँचों की पहचान के लिए रचना के मूल तक पहुँचने के लिए सन्निहित घटक विश्लेषण का आधार लेते हैं।

4.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) संरचनात्मक भाषाविश्लेषण की प्रविधि समझाइए।
(2) सस्युर की मान्यताओं की चर्चा कीजिए।
(3) ब्लूमफ़ील्ड ने भाषा की परिभाषा कैसे की तथा भाषा विश्लेषण की कौन-सी प्रविधि सुझाई?

2. टिप्पणियाँ

(1) संरचनात्मक भाषाविज्ञान के अन्य नाम
(2) अधिक्रमीय (taxonomic) व्याकरण का तात्पर्य
(3) संरचनात्मक भाषाविज्ञान का भाषा शिक्षण पर प्रभाव

इकाई 5 चॉम्स्की तथा रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 भाषा और व्याकरण की संकल्पना
5.3 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण के अध्ययन की प्रविधि
5.4 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण के दो चरण
5.4.1 1957 का मॉडल
5.4.2 1965 का मॉडल
5.5 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण की अद्यतन स्थिति
5.6 सारांश
5.7 अभ्यास प्रश्न

5.0 उद्देश्य

ब्लूमफ़ील्ड के 'भाषा' नामक ग्रंथ के प्रवर्तन से संरचनात्मक भाषाविज्ञान की प्रतिष्ठा हुई, जो भाषा के प्रत्यक्षतः देखे गये मौखिक रूप के आधार पर भाषाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्णन पर बल देता है। चॉम्स्की व्यवहारवादी सिद्धांत का खंडन करते हुए मनोवादी (mentalistic) उपागम पर बल देते हैं, क्योंकि उनके अनुसार भाषा जन्मजात प्रवृत्ति है, मन और विचार से उसका गहरा संबंध है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मनोवादी भाषा विश्लेषण के अभिलक्षण बता सकेंगे;
- चॉम्स्की के योगदान और मान्यताओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण की प्रविधि समझा सकेंगे;
- व्यवहारवाद तथा मनोवाद में अंतर बता सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

चॉम्स्की रू–नि व्याकरण के प्रवर्तक हैं। वे भाषा को आदत नहीं मानते, क्योंकि भाषा सिर्फ़ आदत होती तो तोता हमारी तरह भाषा बोलता। भाषा के व्यवहार की क्षमता केवल मनुष्यों में है, प्राणी मात्र ध्वनि संकेतों से संप्रेषण करते हैं। मनुष्य भाषा को नियमबद्ध व्यवहार के रूप में अर्जित करता है और नियमों के आधार पर वाक्य बनाकर बोलता है। शिशु (या अध्येता) समाज में भाषा सुनते हैं, उसकी रचना का मन में विश्लेषण करते हैं और उन नियमों को मन में आत्मसात करते हैं। इस तरह भाषा (किसी विशेष भाषा) की दक्षता जन्मजात नहीं है, हमें भाषा को समाज से अर्जित करना होता है। लेकिन भाषा को अर्जित करने की प्रवृत्ति जन्मजात (innate) है, मनुष्यमात्र की विशेषता है।

चॉम्स्की (1935-) पोलेंड मूल के अमेरिकी भाषावैज्ञानिक हैं। आपने भाषाविज्ञान का अध्ययन संरचनात्मक भाषाविज्ञान की परंपरा में ही शुरू किया। लेकिन वे संरचनात्मक अध्ययन से विमुख होते गए। गणित, तर्कशास्त्र का अध्ययन, यूरोप के मध्य युग के मनोवादी संप्रदाय का ज्ञान, भारतीय भाषाविज्ञान की परंपरा आदि से परिचित होने के कारण उन्होंने पाया कि संरचनात्मक विश्लेषण केवल वाक्य संरचनाओं में प्राप्त सतही समता को

पकड़ पाता है, लेकिन समान दीखने वाले लेकिन आंतरिक रूप से भिन्न संदिग्ध वाक्यों की व्याख्या नहीं कर पाता। जैसे :

मोहन सोहन को मूर्ख लगता है।	(मोहन मूर्ख है)
मोहन सोहन को मूर्ख समझता है।	(सोहन मूर्ख है)

उनके अनुसार हम मन में निहित अपने अभीष्ट अर्थ के संदर्भ में ही इन वाक्यों में अंतर कर सकते हैं, ऊपरी संरचना के आधार पर नहीं। इसके लिए हमको मन का आधार लेना पड़ेगा। चॉम्स्की ने 1957 में (Syntactic Structures) नामक युग प्रवर्तक ग्रंथ का प्रणयन किया। ब्लूमफ़ील्ड व्यवहारवादी है तो चाम्स्की मनोवादी। वे भाषा की आदत और अर्थ से पृथक रचना विश्लेषण के विरोधी हैं। वे भाषा का अस्तित्व वक्ता के मस्तिष्क में मानते हैं। उनका व्याकरणिक सिद्धांत रूपांतरण–निष्पादनात्मक व्याकरण (Transformational generative grammar) कहलाता हैं। उनका व्याकरण ब्लूमफ़ील्ड की लगभग सारी मान्यताओं का खंडन करता है और भाषा के विश्लेषण, अर्जन आदि के संदर्भ में भाषा की नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है।

भाषा की आदत या व्यवहार द्वारा अर्जन के विरोध में चॉम्स्की भाषा की सृजनात्मकता (Creativity) पर अधिक बल देते हैं। यह सृजनात्मकता मात्र निरीक्षण द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। सृजनात्मकता मन की क्षमता है, जो किन्हीं नियमों के अंतर्गत अब तक न सुनी गयी रचनाओं को भी पहचानता है और नये-नये वाक्यों का उत्पादन (निष्पादन) करता है। कुछ बहुप्रचलित उक्तियों को छोड़कर हम हमेशा, हर बार अपने ढंग से नये वाक्य की रचना करते हैं। भाषा के कुल वाक्यों की संख्या अनंत है, असीमित है। व्यक्ति इन सब वाक्यों को सुनकर भाषा की सही, ग्रहणीय उक्तियों को पहचानता है यह क्षमता उसमें कहाँ से आती हैं?

5.2 भाषा और व्याकरण की संकल्पना

चॉम्स्की तथा उनके संप्रदाय के विद्वानों का कहना है कि भाषा जन्मजात (Innate) गुण है, जो सिर्फ़ मानवों की विशेषता है। यह मानव के विकसित मस्तिष्क के कारण है। अतः किसी और प्राणी में भाषा की प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ती। बच्चा पैदा होने के बाद से ही भाषा द्वारा संप्रेषण और सीखने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है। संसार में कोई मानव समाज नहीं है जो भाषा का प्रयोग न करता हो, संसार में कोई सामान्य (normal) व्यक्ति नहीं है जो भाषा का व्यवहार न करता हो। इस तरह भाषा व्यवहार तथ भाषा सीखने की प्रवृत्ति सार्वभौम (Universal) है। इस कारण हमें भाषा में कई सार्वभौम तत्व मिलते हैं। जैसे सभी भाषाओं में संज्ञा और क्रिया शब्दों का होना। इन सार्वभौम तत्वों के कारण भाषाओं के विश्लेषण की एक सामान्य रूपरेखा स्थापित की जा सकती है, जो वास्तव में भाषा की रचना को नहीं, बलकि भाषा बोलने की मानव की क्षमता तथा सर्जनात्मक शक्ति को उद्घाटित करे। चूँकि ब्लूमफ़ील्ड भाषा को एक भाषा के समुदाय के व्यवहार की वस्तु मानते हैं, उनके सिद्धांत में कहीं भाषा के पीछे की मानसिक क्षमता का स्थान नहीं है, न ही इस कारण भाषाओं के सार्वभौम तत्वों का। ब्लूमफ़ील्ड के अनुसार हर भाषा की व्यवस्था अपने में पूर्ण है। ब्लूमफ़ील्ड का भाषाविज्ञान कई भाषाओं की व्यवस्थाओं के अध्ययन के आधार पर निर्मित है। भाषाओं में जितने वाक्य प्रकार मिलते हैं, वे उनके व्याकरण का कलेवर बनते हैं। वह प्रदत्त (Data) पर आधारित है, जबकि चॉम्स्की का सिद्धांत प्रदत्त पर आधारित नहीं, व्यक्ति की क्षमता पर आधारित है। इसी संदर्भ में चॉम्स्की व्याकरणिकता (grammaticalness) तथा ग्रहणीयता (acceptability) की चर्चा करते हैं। Colourless green ideas sleep furiously यह वाक्य व्याकरणिक है, लेकिन अग्राह्य है। इसका निर्णय भाषा भाषी अपनी भाषा की जन्मजात क्षमता के आधार पर करता

है। चॉम्स्की के अध्ययन का आधार वे संगठित (well formed) वाक्य हैं जो व्याकरणिक भी हों और ग्राह्य भी हों। ऐसे वाक्यों का निर्णय व्यक्ति किस आधार पर और किस तरह से करता है?

ब्लूमफ़ील्ड के अनुसार भाषा आदतों का समुच्चय (A set of habits) है। चॉम्स्की के अनुसार भाषा सीमित नियमों का समुच्चय है, जिनसे व्यक्ति भाषा के असीमित वाक्यों का उत्पादन करता है। इस कारण भाषा मात्र व्यवहार नहीं, नियमबद्ध व्यवहार है (Rule governed behaviour)। ये नियम वक्ता तक कैसे पहुँचते हैं? व्याकरण ग्रंथों से? नहीं। व्यक्ति भाषा सीखने की अपनी जन्मजात प्रवृत्ति के कारण भाषा को सुनता है, भाषा का मन में विश्लेषण करता है और भाषा के नियमों को आत्मसात (Internalise) करता है। इन्हीं मन में अंकित नियमों के आधार पर वह भाषा के सही और ग्राह्य वाक्यों का उत्पादन करता है और पहचानता है। चॉम्स्की इन अंकित नियमों को आंतरिक व्याकरण (inbuilt grammar) कहते हैं। इस आंतरिक व्याकरण के संदर्भ में कहा जा सकता है कि वक्ता स्वयं इन नियमों को नहीं जानता, न उद्घाटित कर सकता है। वह भाषा के प्रयोग में मात्र इनका उपयोग करता है। आंतरिक व्याकरण से भाषा के वाक्यों के उत्पादन की शक्ति ही व्यक्ति की उत्पादक या निष्पादक क्षमता (Generative capacity) है। चॉम्स्की के भाषाविज्ञान का एक मुख्य उद्देश्य है इन आंतरिक नियमों को व्याकरण के क्रमिक नियमों के समुच्चय (ordered set of rules) के रूप में दिखाना, जिससे हम व्याकरण के सहारे या संगणक आदि मशीनों के प्रयोग से सही तथा ग्राह्य वाक्यों का निष्पादन कर सकें। इसी कारण चॉम्स्की का व्याकरणिक संप्रदाय निष्पादन व्याकरण या निष्पादन मॉडल कहा जाता है। अगर हम ब्लूमफ़ील्ड के संप्रदाय के अनुसार प्रेक्षणीय (Observable) व्यवहार के रूप में भाषा को मानें, तो भाषा के अनंत वाक्यों की रचना के विश्लनेषण का हमारे पास आधार नहीं है।

नियमबद्ध व्यवहार के रूप में भाषा को देखने के कारण ही हम व्यक्ति की इस सर्जनात्मक शक्ति का स्पष्टीकरण दे पाते हैं। इस दृष्टि से सर्जनात्मकता तथा निष्पादन क्षमता (Generative Capacity) दोनों शब्द समान अर्थ देते हैं। यह ध्यान रखना होगा कि सर्जनात्मक शक्ति मन या मस्तिष्क का गुणधर्म है। निष्पादन क्षमता व्यक्ति में तो है ही, नियमों के स्पष्ट विवरण के साथ यह क्षमता व्याकरण में भी आ जाती हैं। चॉम्स्की भाषाविज्ञान के लक्ष्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि भाषाविज्ञान के सिद्धांत को हमें व्याकरणों की खोज के लिए यांत्रिक ढंग से प्रविधि देने वाला अध्ययन नहीं मानना चाहिए ब्लूमफ़ील्ड आदि के व्याकरणों में (चॉम्स्की के मंतव्य के अनुसार) भाषा विश्लेषण का यह यांत्रिक उपागम दिखायी पड़ता है। व्याकरण क्या होना चाहिए। इस संबंध में उन्होंने 'पर्याप्तता ' का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। सबसे पहले है प्रेक्षण की पर्याप्तता (Observational adequacy) – किस जगह कौन-सा प्रयोग होता है इसकी सूचना व्यकारण से मिल जाए। उनके अनुसार संरचनात्मक भाषाविज्ञान में यह गुण तो है। दूसरी है वर्णन की पर्याप्तता (Descriptive adequacy) – व्याकरण न सिर्फ प्रयोगों का औचित्य स्पष्ट करे, बल्कि वक्ता के आंतरिक व्याकरण या भाषा बोलने की क्षमता का भी वर्णन कर सके यह गुण पूर्ववर्ती व्याकरणों में नहीं है। यह पर्याप्तता चॉम्स्की के मॉडल में है। यह व्याकरण न सिर्फ भाषा की रचना की विशेषताएँ स्पष्ट करता है, बल्कि इससे भाषा बोलने वालों के मंन की प्रक्रिया पर भी प्रकाश पड़ता है। चॉम्स्की संप्रदाय के कारण भाषा अर्जन, भाषा दोषों का विश्लेषण आदि विषयों क्षेत्रों में भी नये युग का सूत्रपात हुआ। पहले माना जाता था कि व्यक्ति आदत के रूप में व्यवहार द्वारा भाषा सीखता है। इस संप्रदाय ने बच्चों के भाषा अर्जन के संदर्भ में सिद्ध कर दिया कि बच्चे नियमबद्ध व्यवहार के रूप में भाषा सीखते हैं। हर बच्चे का भाषा सीखने का एक निश्चित क्रम होता है। (जैसे पहले एक शब्द, बाद में दो शब्दों के कुछ वाक्य प्रकार आदि, पहले विवृत स्वर, बाद में संवृत स्वर आदि)।

यह क्रम सार्वभौम भी होता है। छह साल तक सभी बच्चे अपनी मातृभाषा में दक्ष हो जाते हैं। भाषा के अर्जन और व्यवहार में जैविक और मानसिक आधार इस संप्रदाय का प्रमुख अभिलक्षण हैं। तीसरी है विश्लेषण की पर्याप्तता (Explantory adequacy)। यह मान सकते हैं कोई भी व्याकरण सार्वभौम भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार खरा भी होना चाहिए। चॉम्स्की खुद मानते हैं कि ऐसा व्याकरण अभी निर्मित होना संभव नहीं है।

भाषा के सही, गलत आदि के निर्णय में आत्मसात् किये हुए नियम (आंतरिक क्षमता) काम करते हैं। इसी को हम व्यक्ति का अंतर्ज्ञान (intuition) कह सकते हैं। यह ज्ञान वाचकीय या अमूर्त वस्तु नहीं है। यह एक निश्चित जानकारी है। यह भांषा की रचना की जानकारी है। चॉम्स्की इसे दक्षता (competence) का नाम देते हैं। इसी तरह भाषा के व्यवहार्य या ग्राह्य होने का ज्ञान व्यवहार (performance) है। वाक्य की रचना दक्षता का क्षेत्र है, उक्तियों का अध्ययन व्यवहार का।

चॉम्स्की के अनुसार भाषा विश्लेषण का आधार भाषा का वह आदर्श वक्ता-श्रोता है, जो एक समरूप (homogenous) भाषा समुदाय का सदस्य हो और भाषा को अच्छे ढंग से जानता हो। उसका भाषा का ज्ञान ही उसकी भाषिक दक्षता है। भाषा के व्यवहार में चूक, विस्मृति आदि कारणों से उत्पन्न दोष, रुचि और अवधारणा में परिवर्तन के कारण उत्पन्न अंतर आदि दिखायी पड़ते हैं। ये व्यवहार की विशेषताएँ हैं, दक्षता के अंग नहीं। भाषावैज्ञानिक का काम है व्यवहार में व्यक्त भाषिक सामग्री में से वास्तविक भाषा दक्षता के अंतर्निहित नियमों की व्यवस्था को ढूँढ़ निकालना-वास्तविक, प्रत्यक्ष व्यवहार में से भाषा व्यवस्था नामक मानसिक सत्य का अन्वेषण करना। यह सहज ही देखा जा सकता है कि ब्लूमफ़ील्ड सिर्फ प्रत्यक्ष व्यवहार को ही महत्व देते हैं, चॉम्स्की प्रत्यक्ष व्यवहार को मात्र भाषिक दक्षता से उत्पन्न (किंचित दोषपूर्ण या अमानक) व्यापार मानते हैं।

यह सवाल उठता है कि क्या हम वास्तविक, प्रत्यक्ष व्यवहार को ही सिद्धांत की आधार वस्तु नहीं बना सकते। हमने दो तरह के कारक निश्चित किये – व्याकरणिकता और ग्राह्यता। व्याकरणिकता दक्षता की विशेषता है, जब कि ग्राह्यता व्यवहार की। कभी-कभी अव्याकरणिक वाक्य भी व्यवहार में ग्राह्य हो जाता है। जैसे, "वह लड़का, हाँ, वही जो उस दिन समझ गये न जिसको आपने मतलब आपके कार्यालय ने भेजा था।" कभी-कभी व्याकरणिक वाक्य भी अग्राह्य हो जाता है – "जैसे राम के भाई के साले के दोस्त के पिता जी के पड़ोसी के लड़के के ....।" व्यवहार के धरातल पर हमें इस वाक्य को भिन्न प्रकार से व्यक्त करना होगा। इसका कारण हम भाषा के सिद्धांत में नहीं, मनुष्य की कार्य क्षमता, मानसिक क्षमता आदि में देखेंगे लेकिन चॉम्स्की के अनुसार व्यवहार की इन विशेषताओं को जानने के लिए दक्षता का अध्ययन आधार है। अकेले व्यवहार पर आधारित व्याकरण की कल्पना असंगत है।

5.3 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण के अध्ययन की प्रविधि

चॉम्स्की के रू–नि व्याकरण के दो निश्चित युग हैं – उनका 1957 का मॉडल, जो सिन्टैक्टिक स्टक्चर्स नामक ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया था और 1965 का मॉडल जो एस्पेक्ट्स आफ़ दि थ्योरी ऑफ़ सिन्टैक्स नामक ग्रंथ में संशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया था। पहली पुस्तक में उन्होंने इस व्याकरण के तीन प्रकार के नियमों की संकल्पना प्रस्तावित की :

पदबंध रचना नियम (Phrase structure rules या P.S. Rules)
रूपांतरण नियम (Transformation rules या T Rules)
रूप स्वनिमिक नियम (Morpho phonemic rules या M Rules)

पदबंध रचना नियम : रू–प्र व्याकरण में विश्लेषण वाक्य से शुरू होता है। सही तथा स्वीकार्य वाक्यों को घटकों में दिखाया जाता है। जैसे :

वा → सप + क्रिप (S → NP + VP)

अर्थात् वाक्य को हम संज्ञा पदबंध तथा क्रिया पदबंध के रूप में दिखाते हैं। इस तरह हर एक रचना को हम घटकों के रूप में लिखते हैं। अतः इन्हें पुनर्लेखन नियम (Rewrite rules) भी कहा जाता है। यहाँ हम एक वाक्य के पदबंध रचना नियम देखेंगे।

वाक्य : राम स्कूल गया।

वा → सप + क्रिप	पुनर्लेखन नियम
सप → संज्ञा	
क्रिप → संज्ञा + क्रि	
संज्ञा → राम, स्कूल	शब्द लेखन नियम
क्रि → गया	

इसी वाक्य को हम एक वृक्ष चित्र (Tree diagram) से भी दिखा सकते हैं।

[नोट : यहाँ आये पदबंध शब्द को पूर्णतः संरचनात्मक भाषाविज्ञान का पदबंध न मानें। दोनों में अंतर है।]

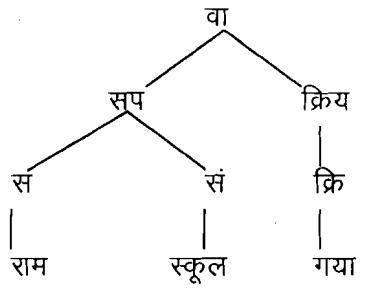

(Nodes

अंतिम शृंखला (Terminal string)

आप देखते हैं कि वाक्य के बाद रचनाओं को दिखाने के लिए (Nodes) आते हैं, जो रचना के द्योतक चिह्न हैं। अंतिम शृंखला में शब्द आते हैं। अन्य शब्द दें तो हम इस पदबंध रचना नियम से सैकड़ों वाक्य निर्मित कर सकते हैं। जैसे :

राम	स्कूल	गया
रहीम	बाज़ार	
जोसफ	स्टेशन	

यह पदबंध रचना नियम को जानने के लिए एक सरलतम उदाहरण था। लेकिन इसमें कई समस्याएँ हैं। राम के साथ सर्वनाम (वह) भी आ सकता है। लेकिन राम, वह आदि 'स्कूल' के स्थान पर नहीं आ सकते। क्रिया में दो कठिनाइयाँ हैं –'सीता' के साथ 'गयी' आएगा। साथ में, गया, जाएगा, जाता है आदि विभिन्न क्रिया रूपों को भी दिखाना होगा। इन सबके संदर्भ में पदबंध रचना लिखने के अन्य कई तकनीक हैं। हम यहाँ उनके विस्तार में नहीं जाएँगे।

रूपांतरण नियम : चॉम्स्की के व्याकरण में रूपांतरण नियम दो प्रकार के हैं। (क) पदबंध रचना नियमों के संदर्भ में हमें व्युत्पन्न वाक्य 'नहीं कर सकते' प्राप्त होता है, लेकिन हिंदी में 'कर नहीं सकते' भी संभव है। ये रूपांतरण नियम से दिखाए जा सकते हैं। दूसरे तरह के रूपांतरण नियम निष्पनन्न वाक्यों की रचना के लिए हैं। एक उदाहरण देखें :

मूल वाक्य :	राम	काम	करता	है
	1	2	3	

व्युत्पन्न वाक्य :	राम से	काम	किया जाता है	
	1	2	3	(वाच्य क्रिया)
रू. नियम	1	2	3	1 से 2 3 (वाच्य क्रिया)

इस प्रकार हम मूल (Kernel) वाक्यों से संबद्ध कई वाक्यों को रूपांतरण नियमों द्वारा व्युत्पन्न करते हैं। इन व्युत्पन्न वाक्यों को पदबंध रचना के नियमों द्वारा अलग से दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

रूपस्वनिमिक नियम : हमने ऊपर चर्चा की कि 'गया' के साथ-साथ 'जाता है' आदि को भी दिखाना पड़ता है। पदबंध रचना नियम में क्रिया के अतिरिक्त हमें 'जा' से 'ग–' को व्युत्पन्न करने के लिए भी नियम देने पड़ेंगे। शब्दों के रूपों से संबंधित ये नियम ही रूपस्वनिमिक नियम कहलाते हैं।

5.4 रूपांतरण निष्पादन व्याकरण के दो चरण

चॉम्स्की ने 1957 के ग्रंथ में तीन तरह के नियम बताये और पदबंध संरचना में शब्द देकर विभिन्न वाक्यों की रचना करने की बात कही। इसमें कई समस्याएँ आईं। हम 'पत्थर ने सोचा', 'आम ने बच्चा खाया' जैसे असंगत वाक्य भी निष्पन्न कर सकते हैं। इन्हें रोकें कैसे? चॉम्स्की ने 1965 की पुस्तक Aspects of the Theory of Syntax में अर्थ तत्व को आंतरिक संरचना के विश्लेषण में स्थान देने की बात कही। यहाँ हम दोनों मॉडलों की विशेषताओं को देखेंगे।

5.4.1 1957 का मॉडल

Syntactic Theory के अनुसार भाषा के वर्णन के तीन तरह के नियम हैं :

(1) **पदबंध रचना नियम** Pharase Structure Rules (Ps Rules) **(प.र. नियम)**

$-S \rightarrow NP + VP$
$NP \rightarrow N$
$VP \rightarrow NP + V$
$N \rightarrow$ राम, लड़का, वह, घर, बाज़ार आदि
$V \rightarrow$ गया, पहुँचा, लौटा, आया आदि

इसी को एक वाक्य के वर्णन के संदर्भ में एक वृक्ष चित्र द्वारा प्रकट कर सकते हैं:

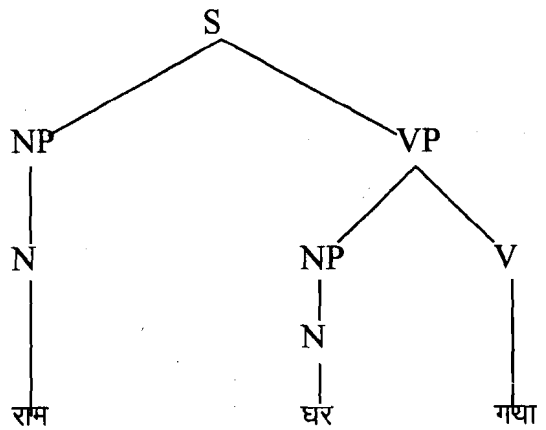

इस प्रकार इस पदबंध नियम से सैकड़ों वाक्यों का निष्पादन होता है।

(2) **रूपांतरण नियम** Transformation Rules (R. Rules) **(रू. नियम)**

हम अकेले पदबंध रचना नियमों से भाषा के सभी वाक्यों का निष्पादन नहीं कर सकते। इनकी अपनी सीमाएँ हैं। प.र. नियमों में एक चिह्न दो चिह्नों में लिखे जाते हैं, जबकि रू. नियम में चिह्नों की शृंखला दूसरी शृंखला में बदली जाती है। जैसे वाक्य रूपांतरण :

$NP_1 + NP_2 + V \quad NP_1 + \text{से} + NP_2 + V + \text{जा (Passive)}$
उसने काम किया

जहाँ V + जो को पुनः अन्य रूपांतरण नियमों से किया जा में बदला जाएगा।

दो तरह के रू. नियम – निहित रचना से अंतिम वाक्य तक पहुँचने के लिए अनिवार्य (जैसे V + जा) तथा एक प्रकार के वाक्य से दूसरे तक पहुँचने के लिए ऐच्छिक (जैसे वाच्य, निषेध, प्रश्न आदि)। यहीं चॉम्स्की नाभिकीय या बीज वाक्यों (kervel sentences) की चर्चा करते हैं। ऐच्छिक रू. नियम नाभिकीय वाक्यों में होते हैं, जो प्रायः सरल, सकर्मक तथा निश्चयार्थक होते हैं (जिनमें पदक्रम, अन्विति आदि के अनिवार्य रू. नियम लागू होंगे)। रू. नियम नाभिकीय वाक्य पर नहीं लागू होते, बल्कि उनकी अंतर्निहित रचना में लगते हैं।

(3) रूप स्वनिमिक नियम (Morphophonemic rules) (M. Rules)

ये उपर्युक्त दोनों नियमों के बाद निष्पन्न रचना को सामान्य वाक्य के उच्चारण के रूप में बदलते हैं।

जैसे : जा + भूतकाल → /गया/
(सम्+सार) संसार → /sansar/
हो +भूतकाल → /हुआ/ आदि

5.4.2 1965 का मॉडल

हम पहले दोनों मॉडलों की तुलना कर लें।

1957	1965	
--	अर्थ तत्व (component)	
प. नियम	वाक्यविन्यासीमा	आधार नियम
रू. नियम	तत्व	रू. नियम
रूपस्वनिमिक नियम	स्वनिक तत्व	

Aspects (1965) के आधार नियमों में एक तरफ प.र. नियम हैं और साथ में शब्दावली (lexicon) है। शब्दावली 'मैंने चाय खायी' जैसी 'गलत' रचनाओं के निष्पादन को रोकती है। उनका 1965 का प्रदर्श निम्न प्रकार से है :

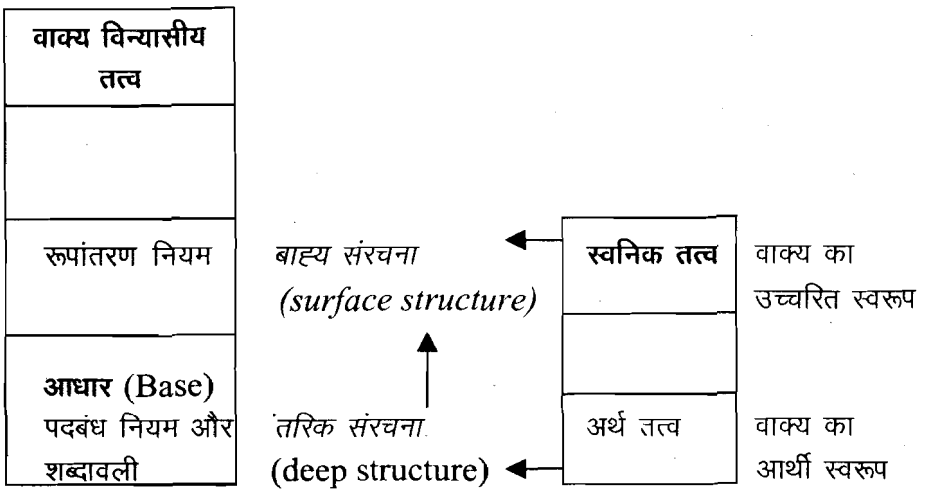

दोनों संरचनाओं के संबंध को निम्न प्रकार से देख सकते हैं :

समान वाह्य रूप, भिन्न आंतरिक संरचना :

John is eager to please
John is easy to please
मोहन सोहन को मूर्ख समझता है।
मोहन सोहन को मूर्ख लगता है।

भिन्न वाह्य रूप, समान आंतरिक संरचना :

The room has two windows.
There are two windows in the room.
हमारा जाना ठीक नहीं
यह ठीक नहीं कि हम जाएँ।

संदेहास्पद रचनाओं को (मैंने भागते चोर को पकड़ा) हम आंतरिक संरचना से स्पष्ट कर सकते हैं।

5.5 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण की अद्यतन स्थिति

1957 में रू–प्र व्याकरण से जो आशाएँ जगीं, वे पूरी नहीं हो पाईं। चॉम्स्की ने कहा था कि भाषा उन सीमित नियमों का समुच्चय है जिनसे हम अनगिनत वाक्यों का निष्पादन करते हैं। लेकिन अभी तक वे गिने-चुने नियम हाथ नहीं लगे। जो थोड़े-से नियम बने, उनमें भी कई अपवाद सामने आए। एक उदाहरण लीजिए। अंग्रेज़ी वाक्य में प्रश्न के निमार्ण के लिए वाक्य के शुरू में Do/Did का उपयोग करते हैं। 'कौन' वाला प्रश्न बनाने क लिए 'who' का उपयोग करते हैं फिर यह who वाक्य के प्रारंभ में चला जाता है।

निश्चयार्थ वाक्य You saw x.
प्रश्नार्थ वाक्य You saw who?
रूपांतरित वाक्य Who did you see –?

(नोट : (–) वह ट्रेस है जहाँ से who का संचरण हुआ है)

लेकिन ये नियम निम्नलिखित वाक्य पर लागू नहीं होंगे, जिनमें दो कर्म पदबंध हैं।

मूल वाक्य You saw x and talked to y.
संचरित वाक्य *Who did you saw x and talk to–?

ऐसे संदर्भों के निवारण के लिए वैयाकरणों ने इन नियमों के नियंत्रण के लिए और नियम बनाए।

इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए चॉम्स्की ने रूपांतरण के नियमों को ही तिलांजलि दे दी और नये ढंग से वाक्य विश्लेषण के संशोधित उपागम का प्रवर्तन किया, जिसकी चर्चा आगे करेंगे। यहाँ हम उनकी नई मान्यताओं की चर्चा कर रहे हैं।

(1) **वे अपने नये सिद्धांत को तत्व और विशिष्टता सिद्धांत** (Principles and Parameter Theory) : कहते हैं। हम यह मानते हैं कि दुनिया की सभी भाषाओं में वाक्य में कर्ता और क्रिया होती है। लेकिन इनका क्रम भाषाओं की अपनी विशिष्टता है। इस तरह हम भाषा की अपनी विशेष रचना के बावजूद सार्वभौम व्याकरण की कल्पना कर सकते हैं।

हर भाषा में कुछ सार्वभौम तत्व होते हैं। जैसे प्रक्षेपण तत्व (Projection Principle) भाषाओं में सामान्य रूप से पाया जाता है। उदाहरण के लिए *राम पसंद करता है गलत वाक्य है, क्योंकि 'पसंद कर' के साथ कर्म का होना अनिवार्य है। प्रक्षेपण तत्व यह कहता है कि शब्दों के कुछ अभिलक्षण वाक्य की रचना में प्रक्षेपित हो जाते हैं। यह विचार सभी भाषाओं पर समान रूप से लागू होता है। इस तरह चॉम्स्की का नया उपागम भाषा-विशिष्ट नियमों की अपेक्षा सार्वभौम व्याकरणिक संरचना के तत्वों की खोज करता है।

(2) **एक्स-बार वाक्यविन्यास** (x - Syntax) : पुराने पदबंध रचना नियमों की जगह वाक्य विन्यास के अध्ययन के लिए प्रवर्तित नयी प्रविधि को एक्स-बार वाक्य विन्यास कहा जाता है। पदबंध रचना नियमों को वृक्ष आरेख से दिखाया जाता था और वैयाकरण अपनी इच्छा से वृक्ष में शाखाएँ और टहनियाँ जोड़ देते थे। वे नियम भाषा विशेष पर ही लागू होते थे और एक भाषा के नियम को दूसरी भाषा पर उसी रूप में लागू नहीं किया जा सकता था। एक्स-बार वाक्य विन्यास सार्वभौम सिद्धांत है, क्योंकि यह nodes के नामकरण पर आधारित नहीं है, रचनाओं की त्रिस्तरीय व्यवस्था पर आधारित है। उदाहरण के लिए :

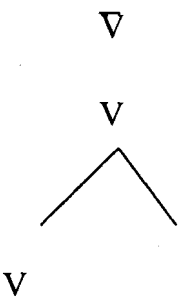

यहाँ V क्रिया पदबंध है,
V मध्यवर्ती रचना है और
V क्रिया शब्द है।
क्रिया पदबंध के भीतर संज्ञा पदबंध (N) का स्थान है। यह विश्लेषण सभी भाषओं पर समान रूप से लागू किया जा सकता है।

(3) चॉम्स्की रूपांतरण निष्पादन नियमों की जगह अपने नये उपागम की घोषणा अपनी नई पुस्तक Lectures in Government and Binding (1981) के माध्यम से करते हैं। उनके नये सिद्धांत में रूपांतरण नियमों की जगह संचरण (movement) के वर्णन का महत्व है। भाषा के दो स्तर हैं – आंतरिक स्तर, जहाँ वाक्य का मूल रूप एक्स-बार वाक्यविन्यास के नियमों के अनुसार रूप लेता है। लेकिन बाह्य संरचना में कई परिवर्तन आ जाते हैं।

मूल रचना : He did see what yesterday.
(tense)
पहला संचरण : Did he t_1 see what yesterday?
दूसरा संचरण : What did he t_1 see t_2 yesterday.

[नोट : t का तात्पर्य है trance]

इस तरह के संचरण के नियम कई वाक्यों के रूपांतरणों को स्पष्ट रूप से समझा सकते हैं, जो सामान्य रूपांतरण नियमों से संभव नहीं है। जैसे :

I expect that he will go.
I expect him to go.
He is expected t to go

(4) **चॉम्स्की के 1981 के अनुशासन और अनुबंध सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएँ हैं :** अ–अ सिद्धांत यह मानता है कि भाषा के वर्णन में एक्स-बार सिद्धांत, कारक सिद्धांत आदि कई उप-सिद्धांत काम करते हैं। प्रेक्षण तत्व आदि मूलभूत विचार आदि भी हैं। ये सब उप-सिद्धांत और व्यवस्थाएँ कुल मिलाकर भाषाविज्ञान के इस नये सिद्धांत का निर्माण करते हैं।

इस नई व्यवस्था को हम निम्नलिखित अनुसार एक आरेख से दिखाएँगे, जिसमें आप विभिन्न सिद्धांतों या व्यवस्थाओं के अंतःसंबंध को जोड़ने वाली रेखाओं से जान सकते हैं।

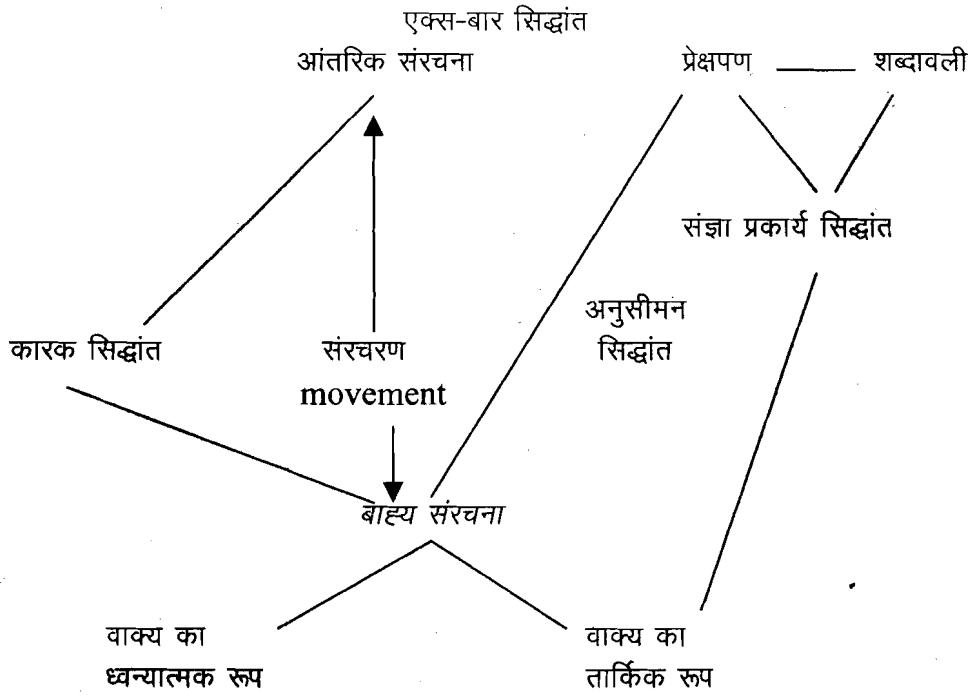

स्रोत : V.J. Cook Chowmsky's Universal Grammar, Basil Blackwell, 1988.

एक्स-बार सिद्धांत से आंतरिक संरचना का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया में शब्दावली प्रक्षेपण सिद्धांत के आधार पर वाक्य की विशेषताएँ सुनिश्चित होती हैं। प्रक्षेपण के प्रभाव को हम वाक्य के बाह्य (उच्चरित) रूप में कारक सिद्धांत तथा शब्द के वाक्य के भीतर संचरण से वाक्य की बाह्य संरचना (उच्चरित रूप) निश्चित होती है। अनुसीमन सिद्धांत यह सूचना देता है कि कौन-सा शब्द कहाँ तक जा सकता है। बाह्य संरचना के दो तत्व हैं – ध्वनि तत्व शब्दों के रूप की व्याख्या करता है। तार्किक रूप वाक्य की अर्थगत संगति का निर्धारण करता है। संज्ञा प्रकार्य सिद्धांत (thematic theroy/ θ - theroy) शब्दों के प्राप्तिकर्ता, अनुभवकर्ता आदि प्रकार्य निश्चित करता है, जो अर्थ तत्व को समझने में सहायक है। ये सब सिद्धांत या व्यवस्थाएँ भाषा के वाक्यों की रचना को समझने तथा व्याख्यायित करने में हमारी सहायता करते हैं।

इस आरेख के अतिरिक्त दो और शब्द हैं जिनसे इस उपागम का नाम सर्जित हुआ है। अनुशासन (government) यह बताता है कि कौन-से घटक किन अन्य घटकों की रचना

को नियंत्रित करते हैं। अनुशासन का एक सामान्य उदाहरण अन्विति है जिसमें संज्ञा का लिंग-वचन क्रिया या विशेषण के रूप को प्रभावित करता है। दूसरा प्रमुख उदाहरण परसर्ग है, जिसके कारण संज्ञा या सर्वनाम शब्द का रूप तिर्यक बनता है। जैसेः

वह + को – उसको

लड़का + को – लड़के को

अनुबंध (binding) वाक्य स्तर से ऊपर शब्दों के अंतःसंबंध को परिभाषित करता है। सर्वनाम और उसका पूर्ववर्ती संदर्भ (संज्ञा) वाक्य को समझने के लिए आवश्यक हैं। उदहारण के लिए :

राम अपने को दोष दे रहा है।

राम उसको दोष दे रहा है।

यहाँ 'अपना' का संबंध 'राम' से है, लेकिन 'उस' का संबंध राम से भिन्न किसी अन्य संज्ञा से है, जिसे पूर्व संदर्भ में देखना होगा। चॉम्स्की अपने इस उपागम को इसी संदर्भ में अनुशासन-अनुबंध सिद्धांत (Government and Binding Theroy) की संज्ञा देते हैं।

5.6 सारांश

चॉम्स्की की रू–नि व्याकरण के संदर्भ में हमने अब तक जो चर्चा की उससे यह बात स्पष्ट होगी कि इस उपागम या भाषा विश्लेषण का संप्रदाय पिछले 45 वर्षों में विकसित होता हुआ हमारे सामने उपस्थित है और आज भी इसमें नई तकनीकें जुड़ती जा रही है। लेकिन आरंभ से अब तक इस व्याकरणिक संप्रदाय की एक विशेषता अंतः सूत्र की तरह इसमें व्याप्त है। यह संरचनात्मक भाषाविज्ञान की तुलना में ऊपरी तौर पर व्यक्त संरचनाओं का रचना के स्तर पर विश्लेषण नहीं करता, बल्कि हर वाक्य को भाषिक क्षमता के आधार पर उसकी अंतर्निहित रचना के आधार पर देखने का यत्न करता है। इस कारण इस अध्ययन क्षेत्र में वाक्यों के अंतःसंबंधों को शब्द के संचरण के संदर्भ में व्याख्यायित करने पर बल दिया जता है।

इस उपागम में विकास का एक प्रमुख कारण है। प्रारंभ में यह सोचा गया था कि भाषिक संरचनाओं को रूपांतरण के नियमों से निरूपित किया जा सकता है। लेकिन नियमों की दुर्वह बाढ़ के कारण छोड़ देना पड़ा। हर नियम के साथ उठ खड़े हुए अपवादों और वृक्ष आरेख तैयार करते समय उत्पन्न व्यक्तिनिष्ठ अवधारणाओं के कारण यह स्पष्ट हो चला था कि समस्त भाषाई संरचनाओं को नियमों में बाँध पाना असंभव-सा है। इसी कारण चॉम्स्की ने नियमों के व्याकरण की जगह सिद्धांतों और उप-व्यवस्थाओं की प्रविधि का निर्माण किया, जिसे वे अनुशासन-अनुबंध सिद्धांत कहते हैं। उनकी मान्यता यह है कि नियम निर्धारण की अपेक्षा वाक्य निर्माण की प्रक्रिया को निहित कारणों के संदर्भ में व्याख्यायित करना अधिक उपादेय है। ऐसी व्याख्याएँ सार्वभौम व्याकरण के निर्माण में सहयोगी होती हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) भाषा के बारे में चॉम्स्की के विचारों का विवेचन कीजिए।

(2) रूपांतरण-निष्पादन व्याकरण की प्रविधि के विकास पर प्रकाश डालिए।

2. टिप्पणियाँ

(1) सार्वभौम व्याकरण

(2) भाषाई दक्षता और भाषा व्यवहार

(3) अनुशासन-अनुबंध सिद्धांत

इकाई 6 समाजभाषाविज्ञान : भाषा और समाज

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 समाजभाषाविज्ञान
  6.2.1 भाषा वैविध्य
  6.2.2 भाषा और बोली
  6.2.3 भाषा के सामाजिक स्तर भेद
6.3 संपर्क में भाषाएँ
  6.3.1 बहुभाषिता और द्विभाषिता के विविध रूप
  6.3.2 कोड–अंतरण और मिश्रण
  6.3.3 बहुभाषिता में जन्मी पिजिन, क्रियोल और मिश्रित भाषाएँ
6.4 भाषा : क्षरण, अनुरक्षण और संघर्ष
6.5 भाषा और सामाजिक संदर्भ
  6.5.1 संबोधन के शब्द
  6.5.2 नाते–रिश्तेदारों के लिए प्रयुक्त संबोधन
  6.5.3 रंगों के शब्द
6.6 हिंदी में भाषा वैविध्य
6.7 सारांश
6.8 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

भाषा और समाज का गहरा संबंध है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि भाषा के माध्यम से ही समाज का गठन, अपने वर्तमान रूप में संभव हुआ है। भाषा संप्रेषण की वस्तु है और आप भाषा के संप्रेषण के बारे में पहली इकाई में पढ़ चुके हैं। सामाजिक व्यवहार वास्तव में सामाजिक संप्रेषण है जो भाषा की संप्रेषणीयता के कारण संभव हो पाया है। भाषा की संरचना में हम सामाजिक संरचना का भी पुट देख सकते हैं। हम जीवन में किसी को 'तुम' से संबोधित करते हैं, किसी को 'आप' से। यह केवल भाषा की संरचना की विशेषता नहीं है, बल्कि समाज में व्यक्तियों के परस्पर संबंध और आपस के व्यवहार पर निर्भर करता है। इसी कारण समाजभाषाविज्ञान का ज्ञान भाषा के अध्ययन के लिए अनिवार्य पृष्ठभूमि है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भाषा क्षेत्र की तथा भाषा और बोलियों के अंतःसंबंध की व्याख्या कर सकेंगे;
- विश्व कुटुंब की संकल्पना के परिप्रेक्ष्य में बहुभाषिकता और द्विभाषिकता का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे;
- एक ही भाषा क्षेत्र में सामाजिक और भाषिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न भाषा वैविध्य को परिभाषित कर सकेंगे;
- भाषा के प्रयोग में, जैसे संबोधन और रिश्ते की शब्दावली के संदर्भ में सामाजिक संरचना का आधार स्पष्ट कर सकेंगे;
- कुल मिलाकर समाजभाषाविज्ञान की संकल्पना को व्याख्यायित कर सकेंगे; और
- हिंदी के भाषा वैविध्य का विवरण दे सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भाषाविज्ञान का आमतौर पर यह अर्थ किया जाता है कि वह भाषा की संरचना, प्रकार्य आदि का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। हम भाषाविज्ञान के साथ ऐतिहासिक अध्ययन

जोड़ लें तो ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का निर्माण होता है। हम भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के अनुप्रयोगों को अपने कार्य के संदर्भ में देखें तो अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (applied linguistics) की सृष्टि होती है। इन सभी अध्ययन क्षेत्रों में भाषा की रचना ही हमारा लक्ष्य होता है।

आधुनिक युग में भाषा के विविध रूपों के कारण हम समझ पाए कि भाषा की संरचना एकीकृत व्यवस्था (monolithic structure) नहीं है। वास्तव में भाषा की संरचना भी एक अमूर्त संकल्पना है, क्योंकि हम किसी समाज में या किसी व्यक्ति में भी भाषा का एक स्थिर, सुनिश्चित रूप नहीं देखते। तब भाषा के बारे में हमारी मान्यता में भी परिवर्तन आया। हम समाज के सभी, विविध रूपों के समावेश को ही 'भाषा' की संज्ञा देते हैं और हर स्थिति में व्यवहृत विविध रूपों को बोली, प्रयुक्ति, शैली आदि नामों से विहित करते हैं। इस तरह समाज में भाषा की विविधता के अध्ययन के फलस्वरूप समाजभाषाविज्ञान की स्थापना हुई।

आधुनिक युग वास्तव में बहुभाषिकता का युग है। एक ही समाज में कई भाषाओं का व्यवहार होता है। आधुनिक व्यक्ति आमतौर पर द्विभाषी है, एक से अधिक भाषाएँ जानता है। समाजभाषाविज्ञान में इस बात का भी अध्ययन होता है कि दो भाषाओं के समाज या व्यक्ति के स्तर पर संयोग के क्या परिणाम होते हैं। समाज में भाषाओं के बीच अस्तित्व के लिए संघर्ष हो सकता है, व्यक्ति दोनों भाषाओं के प्रयोग में एक दूसरे पर प्रभाव की स्थिति पैदा कर सकता है। समाज में दो भाषाओं के योग से एक तीसरे रूप का जन्म हो सकता है।

भाषा और समाज अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस इकाई में यह भी चर्चा की गई है कि किस तरह हम संबोधन, रिश्ते के शब्द आदि से सामाजिक संगठन को द्योतित करते हैं।

6.2 समाजभाषाविज्ञान

भाषा से इतर समाज और समाज से इतर भाषा के अस्तित्व की कल्पना की ही नहीं जा सकती। फिर भी ये दोनों ही काफ़ी समय से स्वतंत्र शोध के विषय रहे हैं और इन्हें जोड़कर देखने का प्रयास पिछले कुछ वर्षों में ही हुआ है। सर्वप्रथम जे.आर. फ़र्थ नामक भाषावैज्ञानिक ने 1957 में पहली बार इन दोनों को जोड़कर 'समाजभाषाविज्ञान' जैसी शब्दावली का प्रयोग किया था।

हम सभी जानते हैं कि भाषा का प्रयोग संप्रेषण को लिए होता है। भाषा से हम अपने अस्तित्व की ही नहीं बल्कि अपनी अस्मिता की भी पहचान बनाते हैं। परंतु प्रश्न यह उठता है कि इस भाषा का प्रयोग होता कहाँ है? समाज में ही न, जहाँ हम अपने मित्रों, बंधुओं, रिश्तेदारों और अन्य स्वजनों के साथ रहते हैं। क्या हम हर व्यक्ति से, जो हमारे संपर्क में आता है, एक ही तरह से बातचीत करते हैं? नहीं न! किसी व्यक्ति से आदर-सूचक शब्दों के साथ और किसी से तू-तड़ाक के शब्दों के साथ और अन्य किसी से स्नेह और प्यार भरे शब्दों के साथ वार्तालापा करते हैं। कहने का आशय यह है कि हमसे सम्पर्क रखने वाले हर व्यक्ति के लिए वार्तालाप के नियम भिन्न हैं, क्योंकि बातचीत में प्रयोग होने वाली भाषा और उसके विभिन्न रूपों का प्रयोग करने के कुछ विशेष नियम हैं। ये विशेष नियम हमारे समाज की संरचना और हमारे आपसी संबंधों की संरचना से निर्धारित होते हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतीय भाषाएँ तीन तरह के द्वितीय पुरुष सर्वनाम 'तू', 'तुम' और 'आप' में भेद रखती है, परंतु अंग्रेज़ी में सब सिर्फ़ एक शब्द You 'यू' का रूप लेते हैं। या फिर हिंदी और अन्य कई मिलती-जुलती भाषाओं में क्रिया के आखिरी चरण से सम्मान की झलक दीखती है, जैसे कि 'बैठ' -'बैठो'- 'बैठिए' वगैरह। या फिर संस्कृत और मराठी में

पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के अतिरिक्त नपुंसक लिंग भी होता है, क्योंकि ये दो भाषाएँ बोलने वाला समाज वस्तुओं को तीन भिन्न दृष्टि से देखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कौन, कब, क्यों और क्या बोलता है - यह जानने की उत्सुकता हम सबको होती है। भाषाविज्ञान का जो रूप इन प्रश्नों के उत्तर की खोज में लगा रहता है, वही समाजभाषाविज्ञान है।

समाजभाषाविज्ञान (स.भा.वि.) वह विज्ञान है जो समाज के परिप्रेक्ष्य में प्रयोग होने वाली भाषा/भाषाओं के रूप या रूपों का नियमित रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण करता है। समाजभाषाविज्ञाना की परिभाषा श्रीवास्तव ने (1994) यूँ की है :

> 'समाजभाषाविज्ञान भाषावैज्ञानिक अध्ययन का वह क्षेत्र है जो भाषा और समाज के बीच पाए जाने वाले हर प्रकार के संबंधों का अध्ययन-विश्लेषण करता है। वह भाषा की संरचना और प्रयोग और उन सभी पक्षों एवं संदर्भों का अध्ययन करता है जिनका संबंध सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रकार्य के साथ होता है। अतः इसके अध्ययन क्षेत्र के भीतर विभिन्न सामाजिक वर्गों की भाषिक अस्मिता, भाषा के प्रति सामाजिक शैलियाँ, बहुभाषिकता का सामजिक आधार, भाषा नियोजन आदि भाषा अध्ययन के सभी संदर्भ आ जाते हैं, जिनका संबंध सामाजिक संस्थान से रहता है।' (श्रीवास्तव 1994 : 72)

समाजभाषाविज्ञान की यह कोशिश रहती है कि वह यह जान पाए कि किसी भी समाज में भाषाई संप्रेषण होता कैसे है? वे कौन से भाषिक नियम हैं जो समाज में रहने वाले स्त्री-पुरुष, बड़े और बच्चे बिना किसी गलतफहमी के पूर्ण संप्रेषण के लिए प्रयोग कर पाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समाजभाषाविज्ञान यह मानकर चलता है कि मात्र भाषा के 'व्याकरण' का ज्ञान काफ़ी नहीं है, परंतु उस भाषा के प्रयोग के नियम जो कि एक विशेष सामाजिक संदर्भ में अपनाए जाते हैं - का जानना ही सही मायनों में भाषा के व्याकरण को जानना है। इस विज्ञान की धारणा है कि कोई भी उच्चरित वाक्य बिना किसी सामाजिक संदर्भ के नहीं होता। अतः समाजभाषाविज्ञान किसी भी समाज में संप्रेषण के लिए प्रयोग में आने वाली भाषा/ भाषाओं का नियमित रूप से अध्ययन करता है। यही कारण है कि इस विज्ञान का सारा ज़ोर चॉम्स्कीय 'भाषा दक्षता' की अपेक्षा 'संप्रेषण की दक्षता' पर है इसकी चर्चा हम इकाई 5 में कर चुके हैं। सन् 1972 में अमरीका के प्रख्यात समाजभाषाविज्ञान डेल हाइम्ज़ ने चॉम्स्की द्वारा की गई 'आदर्श वक्ता-प्रवक्ता' की परिकल्पना पर आघात किया था और कहा था कि भाषा व्यवहार के विशेष सिद्धांत हैं। अतः वे कहते हैं - 'हमें इसकी विवेचना करनी होगी कि क्यों एक सामान्य बच्चा न केवल व्याकरण गत वाक्यों का बल्कि उचित वाक्यों का ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है। वह यह दक्षता भी अर्जित करता है कि वाक्यों को कब बोलना है, और कब नहीं, किससे बोलना है और किससे नहीं, कहाँ बोलना है और कहाँ नहीं और क्या बोलना है और क्या नहीं। संक्षेप में, मानवीय बालक भाषा कर्म (speech act) के ऐसे भाषा कोष (repertoire) पर बहुत जल्दी अधिकार जमा लेता है, जिससे वह न केवल तमाम भाषा-घटनाओं (speech events) में भाग ले पाता है वरन् दूसरों द्वारा बोले गए वाक्यों का सही-सही मूल्यांकन भी कर लेता है। अतः हाइम्ज़ भाषा दक्षता की एक व्यापक परिभाषा की वकालत करते हैं और इसे 'संप्रेषण दक्षता' (communicative competence) कहते हैं। समाजभाषाविज्ञान इस 'संप्रेषण दक्षता' के नियमों के अध्ययन और विश्लेषण को ही अपना ध्येय मानता है। मोटे तौर पर यूँ कहें तो असंगत नही होगा कि यदि भाषाई संप्रेषण है तो समाज है और यदि भाषाई संप्रेषण नहीं है तो समाज का अस्तित्व भी नहीं के बराबर है। इस तरह भाषाविज्ञान की जो शाखा एक समाज में प्रयुक्त भाषा के प्रयोग और संप्रेषण के नियमों का अध्ययन करे, वही समाजभाषाविज्ञान है।

चलते-चलते आपको यह बता दें कि समाजभाषाविज्ञान या समाजोन्मुख भाषाविज्ञान और भाषा समाजशास्त्र (जिसकी चर्चा आजकल काफ़ी हो रही है) में अंतर है। भाषा के वे तमाम

पहलू जिनका संबंध समाज के संस्थान एवं संचालन से जुड़ता है वे ही 'भाषा का समाजशास्त्र' के अंतर्गत आते हैं। उदाहरणतया, राजभाषा, राष्ट्रभाषा या शिक्षा को लिए उचित एक भाषा विशेष का चयन। या फिर त्रिभाषा के अंतर्गत किन्हीं विशेष तीन भाषाओं का चयन। मातृ भाषाओं का जनगणना रिपोर्ट (census report) में दर्शाये जाने का विकल्प आदि।

6.2.1 भाषा वैविध्य

वैविध्य याने विविधता। भाषा समाज में विविध रूपों में हमारे सामने आती है। शायद ही संसार की कोई भाषा हो जो सिर्फ़ एक निश्चित रूप में प्रकट होती हो। भाषा वैविध्य का अध्ययन समाजभाषाविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य है।

शायद आप सब इस कहावत से परिचित हैं – "चार कोस पर बदले पानी आठ कोस पर बानी।" यानी भौतिक दूरी के कारण भाषा के रूप में परिवर्तन समाजभाषाविज्ञान का बुनियादी सिद्धांत है। इस संदर्भ में भाषाविज्ञान (याने भाषा के व्याकरण) और समाजभाषाविज्ञान में मूलभूत अंतर है। भाषाविज्ञान भाषा के एक कल्पित मानक रूप का वर्णन करने का यत्न करता है। भाषा की विविधता को एक ही व्याकरण में समेटना व्याकरण के लिए असंभव है। विख्यात भाषावैज्ञानिक चॉम्स्की कहते हैं कि एक आदर्श मातृभाषी के मन में स्थित भाषाई क्षमता का वर्णन-विश्लेषण ही भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र है। इसमें उन्होंने भाषा की विविधताओं को समेटने का कोई उपक्रम नहीं किया।

समाजभाषाविज्ञान, इसके विपरीत 'भाषा' को व्यापक पटल में, उसकी समस्त बोलियों और शैलियों के समग्र रूप में देखने का यत्न करता है। भाषा में वैविध्य के प्रमुखतः दो आधार हैं – क्षेत्रीय बोलियाँ और आयु, पेशा, लिंग आदि विभिन्न वर्गों के भाषा व्यवहार के कारण उत्पन्न सामाजिक बोलियाँ। इस प्रकार हर व्यक्ति की भाषा में उसकी क्षेत्रीयता, लिंग, आयु, पेशा आदि कारकों से हर दूसरे व्यक्ति से भिन्न भाषा रूप दिखाई देता है। समाजभाषाविज्ञान व्यक्ति के भाषा रूप को उसकी व्यक्तिबोली (idiolect) की संज्ञा देता है। यह उस व्यक्ति का अपना कोड (code) है। समाज के सभी व्यक्तियों की व्यक्तिबोलियों का समग्र ही भाषा है इसे व्यक्तिगत कोडों के समग्र के अर्थ में कोड आधात्री (code matrix) कहा जाता है जिसे निम्नलिखित तालिका से समझ सकते हैं।

व्यक्तिगत कारक ↓

		क्षेत्र	लिंग पेशा शिक्षा आयु		
व्यक्ति	1			व्यक्ति बोली	1
	2				2
	3				3
	4				4
	.				
	.				

तालिका 1 : भाषा की कोड आधात्री (पूरी भाषा) : व्यक्तियोंबोलियों का समूह

व्यक्तिबोलियों का अध्ययन हमारे लिए कठिन है। लेकिन हम क्षेत्र तथा व्यक्तिगत कारकों के संदर्भ में कुछ प्रमुख भाषा रूपों का अध्ययन कर सकते हैं, जिससे भाषा को उसकी समग्रता में देख सकें। आगे हम क्षेत्रीय बोलियों और सामाजिक बोलियों के बारे में पढ़ेंगे।

6.2.2 भाषा और बोली

भाषा और बोली का प्रश्न उतना ही विवादास्पद है जितना पति-पत्नी के अधिकारों का द्वंद्व। 'भाषा' को 'सम्मानजनक' और 'बोली' को 'निम्न' मानने की प्रथा चिरकाल से चली आ

रही है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी भाषा या उसका रूप निम्न या उच्च नहीं हो सकता। उनके मतानुसार किन्हीं दो भाषाओं अथवा भाषा रूपों में बोधगम्यता हो तो वे आपस में एक-दूसरे का विकल्प (variation) कहलाई जा सकती हैं। सब भाषाएँ एक समान हैं क्योंकि हरेक भाषा सामाजिक संप्रेषणता का गुण लिए हुए है। उदाहरण के लिए सर्वमान्य 'हिंदी भाषा' में जो 'खड़ी बोली' के रूप में जानी जाती है, तथा ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि उसकी उपभाषाओं में शब्द, रूपरचना, वाक्य-रचना, अर्थ-संरचना या शुद्ध व्याकरण के आधार पर भाषा बोली का भेद करना संभव नहीं है। शुद्ध भाषिक दृष्टि से जिस प्रकार 'खड़ी बोली' भाषा है वैसे ही ये सारी उपभाषाएँ (बोलियाँ) भी 'भाषाएँ' हैं। प्रश्न मात्र राजनीति और इतिहास का है। जो कल तक 'बोली थी वह आज भाषा हो गई और जो कल तब भाषा थी (उदाहरण के लिए 'ब्रज भाषा') वह 'बोली' कहलाती है। हाँ, समाजभाषावैज्ञानिक यह मानकर चलते हैं कि यदि भाषा और बोली में अंतर किया जा सकता है, तो यह अंतर मुख्य रूप से व्यापकता, प्रयोजन और प्रतिष्ठा के संदर्भ में देखा जा सकता है। उनके मतानुसार भाषा और बोली के निम्नलिखित भेद हैं, जो श्रीवास्तव (1994) ने एक तालिका के रूप में इस तरह बाँधे हैं:

भाषा	बोली
1. सामाजिक प्रकार्य में भाषा अध्यारोपित (superordinate) होती है।	सामाजिक प्रकार्य में बोली 'भाषा' के अधीन (subordinate) होती है।
2. भाषा का क्षेत्रीय आधार अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हेता है।	बोली का क्षेत्र, भाषा की तुलना में अपेक्षाकृत छोटा होता है।
3. भाषा का प्रयुक्ति-क्षेत्र अधिक बहुमुखी होता है, क्योंकि भाषा साहित्य, शिक्षा, प्रशासन आदि अनेक व्यवहार-क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है।	बोली का प्रयुक्ति-क्षेत्र सीमित होता है।
4. भाषा समाज में 'प्रतिष्ठा' और 'प्रभुता' का द्योतक होती है।	'बोली समाज में प्रतिष्ठा का कारण नहीं बनती। उसका प्रयोग 'आत्मीयता' का व्यंजक होता है।
5. भाषा का प्रयोग औपचारिक संदर्भों में होता है।	बोली का प्रयोग प्रायः अनौपचारिक संदर्भों में होता है।
6. भाषा सापेक्षतया अधिक मानकीकृत होती है।	बोली में भाषा-विकल्पन सापेक्षतया अधिक होता है।
7. भाषा अपनी विभिन्न बोलियाँ बोलने वालों के बीच संपर्क भाषा का भी काम करती है।	बोली प्रायः मातृभाषा के रूप में ही प्रयुक्त होती है।

स्रोत : श्रीवास्तव 'हिंदी भाषा का समाजशास्त्र' (1994 : 50)

इस तालिका में भाषा-बोली के भेद को वर्णित करने का प्रयास किया गया है, कुछ भाषावैज्ञानिकों का मत है कि सभी बोलियाँ वास्तव में अपनी-अपनी भाषा का शैली रूप हैं। भाषा एक स्थिर और बेजान वस्तु नहीं है। उसकी विविधता ही उसे संप्रेषण का माध्यम बनाती है। भाषा वैविध्य में भी एक नियमितता है। यही नहीं, उसका भी एक व्याकरण है। भाषा की यह विविधता दो विशेष आयामों पर परिलक्षित होती है। पहला तो तब जब उसके प्रयोग करने वाले दो भिन्न क्षेत्रों से होते हैं। जैसे एक क्षेत्र में 'साग' का अर्थ प्रत्येक प्रकार की सब्ज़ी से होता है और दूसरे क्षेत्र में सिर्फ़ 'हरी सब्ज़ी' से। या फिर एक क्षेत्र में 'रोटी' का अर्थ मात्र रोटी से होता है और दूसरे क्षेत्र में (उदाहरणतया दिल्ली में पंजाबी प्रभाव के कारणवश) सर्व-व्यापक 'भोजन' से। या फिर एक क्षेत्र में 'ऐ' और 'औ' ध्वनियों को मूलस्वर के रूप में बोलते हैं और दूसरे क्षेत्र में संध्यक्षर के रूप में। उदाहरणतया पैसा > पइसा ; और > अउर आदि। या फिर एक ही वस्तु दो क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाए - तो भी वह बोलियों का ही परिणाम माना जाता है। उदाहरणतया, 'घिया' एक क्षेत्र में और 'लौकी' दूसरे में, या 'कद्दू' दिल्ली में और 'कुम्हड़ा' इलाहाबाद में या उत्तर प्रदेश

में 'मोज़ा' और दिल्ली में 'जुराब'। भाषा की इस तरह की वैविध्यता को हम स्थानीय/ भौगोलिक क्षेत्रीय विविधता के नाम से जानते हैं।

समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत बोलीविज्ञान (dialectology) नामक विषय क्षेत्र इन बोलियों का अध्ययन करता है। वह शब्दों, रूपों और वाक्य प्रकारों के प्रयोग के स्थान के आधार पर मानचित्र तैयार करता है। ये मानचित्र बोलियों को पहचानने के लिए आधार बनते हैं। जिस क्षेत्र में समान शब्दों, रूपों और संरचनाओं का गुंफन मिलता है, वह एक बोली क्षेत्र है। जैसे संज्ञाओं के रूप में ओकारांत उच्चारण (छोरो, घोड़ो) ब्रज भाषा क्षेत्र को खड़ी बोली क्षेत्र से अलग करता है।

6.2.3 भाषा के सामाजिक स्तर भेद

दूसरा आयाम जो भाषा-बोली के भेद को उजागर करता है वह है सामाजिक। जब भाषा-वैविध्य का कारण वक्ता का सामाजिक स्तर-भेद (उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग), जाति-भेद, लिंग-भेद (स्त्री-पुरुष), शिक्षा (शिक्षित-अशिक्षित), या फिर उम्र-भेद हो, तब भाषा की विभिन्न शैलियों को सामाजिक बोलियों के रूप में समझा एवं देखा जाता है।

स्त्री-पुरुष : स्त्री-पुरुष की भाषाओं पर आजकल काफ़ी शोध हो रहा है और यह माना जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा विशेषणों का और मुहावरों का ज्यादा प्रयोग करती हैं। रंगों के विवरणों में स्त्रियों की शब्दावली रूपकों से भरी होती है - उदाहरणतया, 'चम्पई सफ़ेद', 'कत्थई भूरा', 'खूनी लाल', 'आसमानी नीला' वगैरह। वाक्यों के पीछे '-री' का प्रयोग या फिर संलग्न सवाल (tag questions) की अधिकता (आज आ रही हो न!) स्त्रियों की भाषा का महत्वपूर्ण अंग है। छोटा नागपुर (बिहार) की ओराँव जाति में (जिसे कुडुख भी कहते हैं) स्त्री और पुरुष द्वारा दो अलग-अलग क्रिया-रूपों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए :

	पुरुषों द्वारा प्रयुक्त	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
बहुवचन		
'लड़के'	कुक्को-र	कुक्का खदअए
'बूढ़े'	पचगी-र	पचगी आलअए
'नृतक'	नलू-र	नलू आलअए
'लड़कियाँ'	कुक्कोए-र	कुक्कोए आलअए

अर्थात, स्त्रियों का व्याकरण भिन्न और पुरुषों का भिन्न। क्या भिन्न व्याकरण स्त्रियों की अस्मिता को भिन्न बनाता है? यह विवाद का प्रश्न है, पर निश्चय ही हमें सोचने पर मजबूर करता है।

उम्र : हमारे समाज में छोटे-बड़े एक-सी भाषा का प्रयोग नहीं करते। बच्चे बड़ों को 'आप' और बड़े बच्चों को 'तुम' कहकर संबोधित करते हैं। यही नहीं 'समझ रहे हो न! सुन रहे हो न!' जैसे वाक्य मात्र उम्र में बड़े लोग छोटों से बात करते वक्त प्रयोग कर सकते हैं। उम्र में छोटे यही वाक्य बड़ों से कहें तो अशिष्टता समझी जाएगी। भारतीय भाषाओं में 'जी' लगाकर बोलना सम्मानसूचक है, जो उम्र में बड़े व्यक्तियों के लिए प्रयोग होता है।

शिक्षा : आधुनिक हिंदी में संस्कृत की बहुलता और बातचीत में अंग्रेज़ी शब्दों की बहुलता दोनों ही शिक्षित वर्ग की पहचान है। यही नहीं, हिंदी बोलते समय कुछ परिचित अंग्रेज़ी शब्दों का बिगड़ा रूप भी शिक्षा/ अशिक्षा का परिचय दे देता है। उदाहरणतया 'स्टेशन' > इस्टेशन/ सटेशन, क्लास > किलास, स्कूल > इस्कूल/ सकूल आदि रूप अशिक्षित व्यक्ति की भाषा की पहचान हैं। यही नहीं बात करते-करते हिंदी से अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी से हिंदी में कोड परिवर्तन (code switching) (विस्तृत चर्चा आगे है) प्रायः शिक्षा का द्योतक समझा गया है।

जाति भेद : हमारे समाज में उच्च और निम्न जातियों की उपस्थिति उनकी प्रयुक्त भाषाओं में भी परिलक्षित होती है। द्रविड़ परिवार की तमिल भाषा में ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों की भाषा में शाब्दिक और व्याकरणिक भेद देखा गया है। इसी तरह अंतर द्रविड़ की अन्य भाषाओं जैसे कन्नड़ और मलयालम में भी है। उदाहरणतया धारवाड़ कन्नड़ में ब्राह्मण-भाषा में कर्म और सम्प्रदान कारक चिह्न भिन्न-भिन्न हैं, परंतु हरिजनों की भाषा में यह भेद नहीं पाया जाता। देश के अन्य राज्यों में ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण की बोलियाँ भी बहुत भिन्न पाई जाती हैं।

सामाजिक स्तर भेद : आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग और गरीब लोग अक्सर दो भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोलते नज़र आते हैं। कभी-कभी यह भिन्नता इतनी होती है कि परस्पर 'बोधगम्यता' की स्थिति भी नहीं बन पाती। भारत वर्ष के शहरी समाज में आर्थिक सम्पन्नता, शिक्षा एवं उच्च वर्गीयता अक्सर साथ-साथ ही पायी जाती है - अतः इन सब कारणों से उपजी बोली निम्न वर्ग के अशिक्षित लोगों की बोली से भिन्न होती है। दिलचस्प बात यह है कि जितना ही व्यक्ति शिक्षित और उच्च वर्ग का होता है उसकी द्विभाषिता की क्षमता उतनी ही कम होती है। शहर में रहने वाले मज़दूर या गाँव में रहने वाले गरीब लोगों की द्विभाषिता की क्षमता अधिक है। वे कम से कम दो-तीन भाषाएँ तक अवश्य जानते हैं। 'बहुभाषिता' में आदिवासियों का जवाब नहीं। हाल में किए गए शोध से ज्ञात होता है कि आदिवासी क्षेत्रों में बहुभाषिता 85% है जो संपूर्ण देश की बहुभाषिता के आँकड़ों से कहीं अधिक है। (People of India Project, K.S. Singh, 1993)

शिक्षित वर्ग प्रायः 'मानक रूप' का प्रयोग करता है और 'मानक-रूप' का उद्भव उसकी भाषा-विकल्पनीयता की कमी के कारण ही होता है। यह बात अजीब तो है, पर है सत्य। 'मानकीकरण' की प्रक्रिया में भाषा के नाना-प्रकार के विकसित रूपों में से कोई एक को स्वीकार किया जाता है और परिणामतः मानक भाषा में भाषिक विकल्पन बोली की मात्रा से बहुत कम होता है। अतः हम 'भाषा' और 'बोली' की संज्ञा से उठकर यदि इसे 'भाषा वैविध्य' के नाम से पुकारें तो उचित हेगा। भाषा वैविध्य (भाषा/ बोली) को हम संक्षेप में नीचे दिए गए चित्र से समझ सकते हैं।

भाषा वैविध्य के कारण

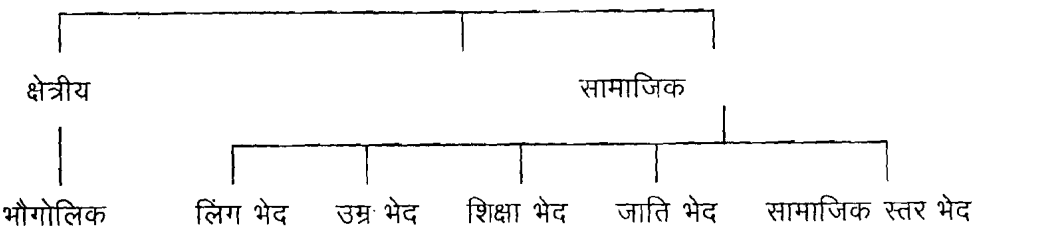

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वही दो बोलियाँ 'भाषा वैविध्य' का अंग बन सकती हैं जो आपसी बोधगम्यता को लिए हुए हों एवं एक ही भाषा-परिवार की हों। इस आधार से यदि दो बोलियाँ परस्पर बोधगम्य न हों तो उन्हें दो विशिष्ट भाषाओं के रूप में जाना जाता है।

एक बात ध्यान देने योग्य है। क्षेत्रीय कारणों से उपजी भाषाओं में कभी-कभी बोधगम्यता बहुत कम पाई जाती है, पर फिर भी उन्हें एक ही भाषा की माला में पिरोया जाता है। देखिए ध्यान से 'हिंदी क्षेत्र'। भारत सरकार द्वारा मान्य इस क्षेत्र के एक कोने में राजस्थानी, हाड़ौती जैसी भाषाएँ हैं और दूसरे कोने में मगही-मैथिली जैसी। ये सभी भाषाएँ 'हिंदी' भाषा की बोलियाँ या यूँ कहें 'विविध रूप' कहलाई जाती हैं। पर इनको एक 'भाषा' में बाँधना राजनीतिक/सरकारी कदम है – भाषावैज्ञानिक या समाजभाषावैज्ञानिक नहीं। समाजभाषावैज्ञानिक की दृष्टि से हाड़ौती, बागड़ी, मालवी-मेवाती, जयपुरी सब 'राजस्थानी' के विविध रूप हैं, जो बिहारी भाषा के मैथिली, मगही, भोजपुरी रूपों से भिन्न हैं। इस दृष्टि

से देखा जाए तो सामाजिक कारणों से उपजे भाषा-वैविध्य में भौगोलिक कारणों से उपजे भाषा-वैविध्य से कहीं अधिक बोधगम्यता पाई जाती है।

हिंदी प्रदेश का नक्शा

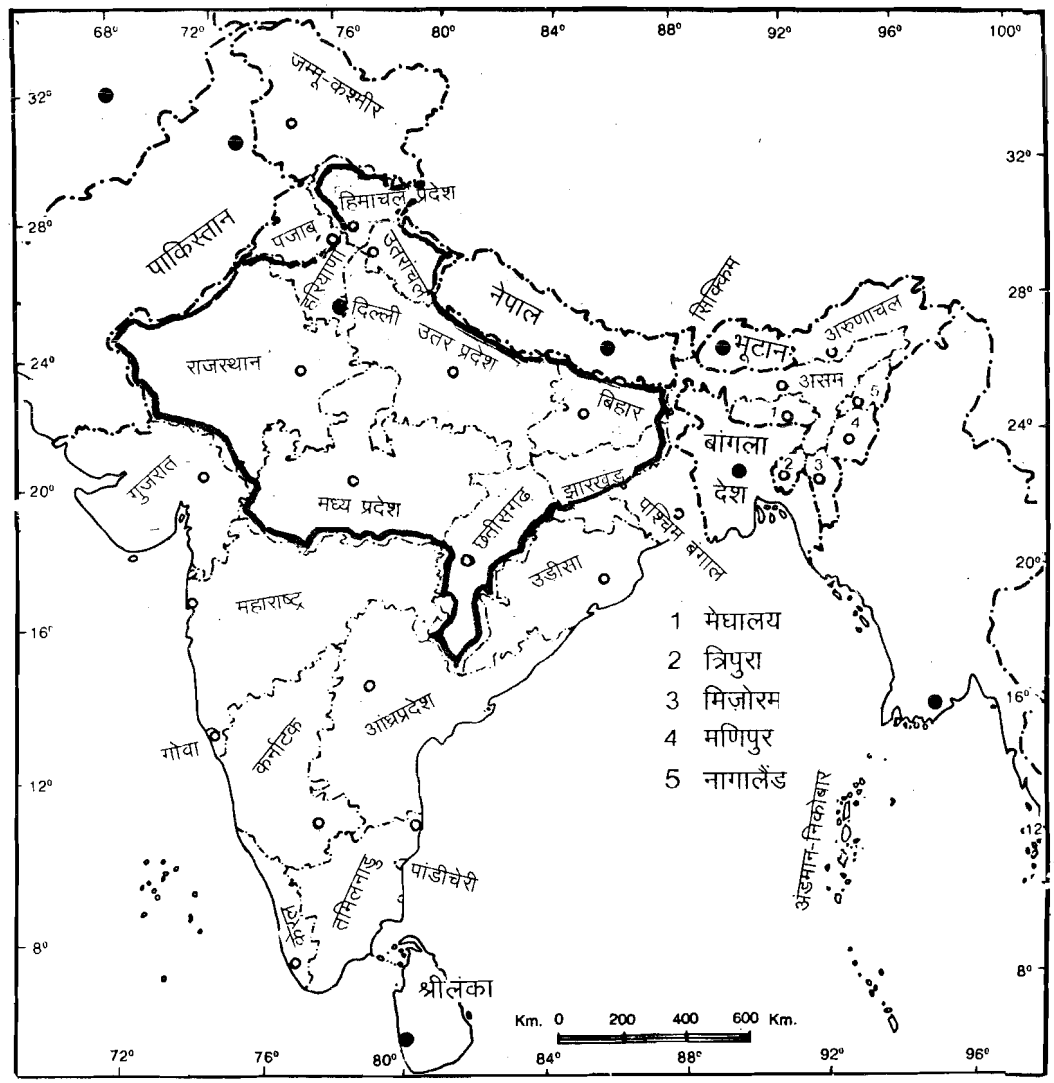

Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
Responsibility for the correctness of the internal details rests with the Publishers.
The External Boundary and Coast-line of India shown on this map agree with the Record copy approved by the Survey of India, Dehra Dun.
The Administrative Headqu[illegible]ters of Chandigarh, Haryana and Punjab are at Chandigarh.

मानचित्र 1 : भारत का हिंदी क्षेत्र

6.3 संपर्क में भाषाएँ (Languages in Contact)

अब तक हमने केवल एक भाषा के परिप्रेक्ष्य में भाषा वैविध्य की चर्चा की। लेकिन विश्व कुटुंब के इस ज़माने में कोई भी भाषा अन्य भाषाओं से अलग द्वीप बनकर नहीं रह सकती। वह कई संदर्भों में अन्य भाषाओं के संपर्क में आती है। संपर्क में आने वाली भाषाएँ एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति भी एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग करता है। इस संदर्भ में हम संपर्क की स्थिति को हम बहुभाषिकता (multilingualism) कहते हैं। भारत बहुभाषी देश है, क्योंक यहाँ कई भाषाएँ बोली जाती हैं।

द्विभाषिकता व्यक्तियों के भाषा ज्ञान को सूचित करने वाला शब्द है, भले वह एक से अधिक भाषाएँ जानता है। मान लें कि मैं हिंदी, अंग्रेज़ी और बांगला जानता हूँ। मैं हिंदी और अंग्रेज़ी के संदर्भ में द्विभाषी हूँ, मैं हिंदी बांगला के संदर्भ में द्विभाषी हूँ। दो से अधिक भाषाएँ जानने वाले को बहुभाषी (multilingual) नहीं कहा जाता। वह बहुभाषाविद् (ployglot) कहलाता है। इस तरह बहुभाषिकता सामाजिक स्तर की संकल्पना है।

भाषाई संपर्क में कई बातें देखी जा सकती हैं :

i) द्विभाषिकता के कारण लोगों में दोनों कोडों (Codes) का मिश्रण आदि बातें देखी जा सकती हैं।

ii) दो भाषाओं के संपर्क से तीसरा भाषा रूप पैदा हो जाता है।

iii) दोनों भाषाओं में आदान-प्रदान की स्थिति आती है।

iv) द्विभाषी समाज में भाषाई संपर्क आदि भी होते हैं।

आगे हम इन प्रमुख परिणामों का अध्ययन करेंगे।

6.3.1 बहुभाषिता और द्विभाषिता के विविध रूप

भारत चिरकाल से बहुभाषी देश रहा है। हर प्रांत की अपनी भाषा होते हुए भी पहले संस्कृत देश को जोड़ने वाली भाषा थी, अब हिंदी देश की संपर्क भाषा के रूप में उभरी। इस कारण देश का शिक्षित वर्ग हमेशा द्विभाषी भी रहा है। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा, महानगरों का उदय और दूर संचार और जन संचार माध्यमों का विकास – इन सब कारकों से लगभग हर शिक्षित व्यक्ति द्विभाषी है और एक ही समय में एक से अधिक भाषाओं का भिन्न स्तरों में प्रयोग करता है। यह भाषा वैविध्य का दूसरा आयाम हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि आप दिन में कितनी भाषाओं और कितने भाषा रूपों का प्रयोग करते हैं? हम एक साथ कई भाषाओं और उनकी कई बोलियों, शैलियों और प्रयुक्तियों (प्रयोजनमूलक रूपों) का प्रयोग बड़ी सरलता से करते हैं।

द्विभाषिता की स्थिति में व्यक्ति की एक भाषा प्रमुख (dominent) होती है, दूसरी गौण। मातृभाषा के प्रदेश में मातृभाषा ही प्रमुख होती है, व्यक्ति मातृभाषा से भिन्न प्रदेश में रहे तो उसकी मातृभाषा गौण और प्रदेश की भाषा प्रमुख हो जाती है। बहुभाषिक स्थिति में व्यक्ति की द्विभाषिता के इस तरह कई रूप देखे जा सकते हैं। निम्नलिखित स्थितियाँ देखिए :

(1) **भाषा 1 + भाषा 2 :** जब वक्ता एक ही भाषा-परिवार की दो भाषाओं में दक्षता रखता हो, जैसे हिंदी एवं बंगला, अथवा मराठी एवं गुजराती। कम स्थितियों में दोनों भाषाओं में समान दक्षता होगी। प्रायः प्रदेश की भाषा प्रमुख होगी।

(2) **भाषा 1 + भाषा 3 :** जब वक्ता दो विभिन्न भाषा परिवार की भाषाओं में दक्षता रखता हो, जैसे हिंदी-तमिल या मणिपुरी-हिंदी। इसके अंतर्गत हम अंग्रेजी को भी

ले सकते हैं जो भारोपीय परिवार की है, पर अपने देश में अभी भी इसे पूर्ण रूप से भारतीय भाषाओं में नहीं गिना जाता फिर भी इसकी स्थिति जर्मन या जापानी जैसी पूर्ण विदेशी भाषा की नहीं है। इस स्थिति में मातृभाषा ही प्रायः प्रमुख होती है।

(3) **भाषा 1 + भाषा 4 :** जब वक्ता मातृभाषा के अतिरिक्त कोई एक विदेशी भाषा का प्रयोग करना भी जानता है, जैसे हिंदी एवं फ्रेंच/ जर्मन। विदेशी भाषा की दक्षता कम ही होती है।

अब तक हमने जिस द्विभाषिकता की चर्चा की, वह बाह्य है, दो भाषाओं के बीच में है। इसी तरह एक भाषिक स्थिति में भी द्विभाषिकता की बात देखी जा सकती है, जहाँ व्यक्ति भाषा की दो बोलियाँ बोले या भाषा की दो विशिष्ट शैलियों का प्रयोग करे। इसे कुछ विद्वान द्विभाषिकता मानते हैं, कुछ नहीं।

आंतरिक द्विभाषिकता के अंतर्गत उस स्थिति को लिया जाता है जब वक्ता एक ही भाषा की दो बोलियों जैसे कि हिंदी के साथ-साथ अवधी, ब्रज की दक्षता रखता हो या फिर एक मानक रूप भाषा जैसे हिंदी और एक बोली जैसे कि भोजपुरी की दक्षता रखता हो। एक और स्थिति जिसे भाषा द्वैत के नाम से जाना जाता है, का उल्लेख चार्लस् फरग्यूसन (1959) ने सबसे पहले किया था। इस स्थिति में वक्ता एक ही भाषा की दो विभिन्न शैलियों का या कोडों का प्रयोग करता है जिनमें से एक उच्च और दूसरी निम्न समझी जाती है। उदाहरणतया बंगला-समाज में 'साधु भाषा' और 'चलित भाषा' का अलग-अलग प्रयोग होता देखा गया है। कुछ-कुछ यही स्थिति तमिल भाषियों की भी है। औपचारिक तमिल में और सामान्य व्यावहारिक तमिल में काफी अंतर है। आजकल की 'सरकारी हिंदी' प्रयोग करने वाले हिंदी भाषी भी भाषा द्वैत के शिकार हैं।

द्विभाषिता के रूप – बाह्य और आंतरिक

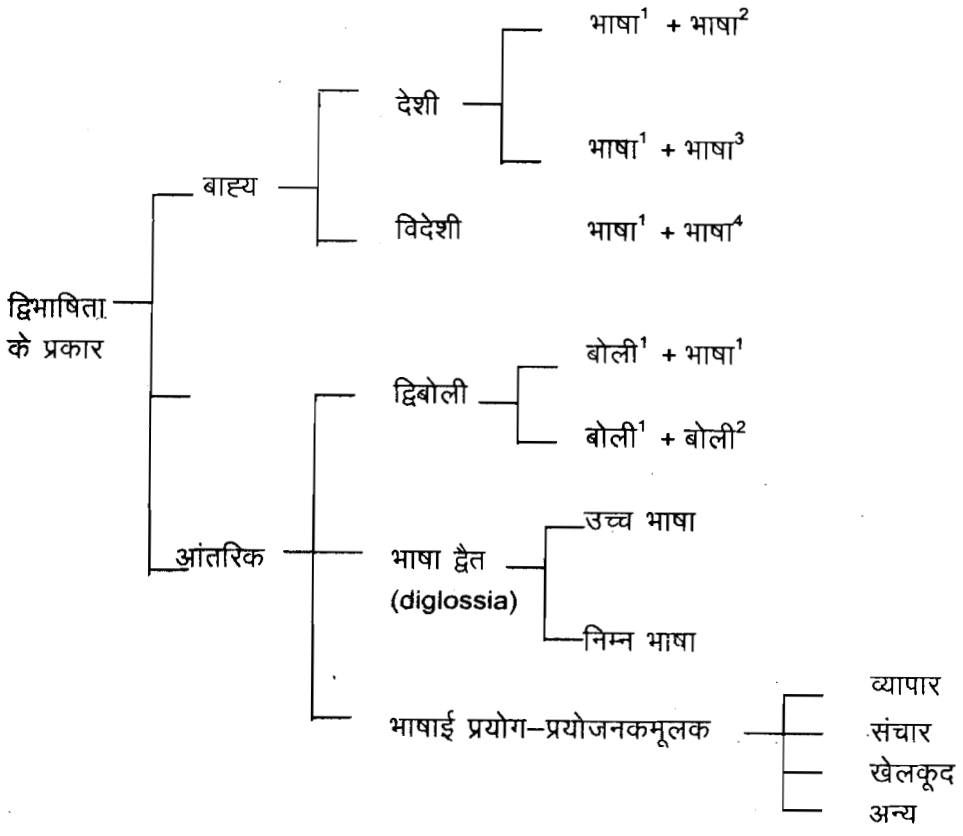

अंत में द्विभाषिता के अंतर्गत हम इन सब शैलियों को ले सकते हैं जो भिन्न-भिन्न परिवेश में उपजी और प्रयुक्त होती है। उदाहरणतया व्यापार में प्रचलित शैली या फिर विज्ञापन की शैली या फिर खेलकूद की शैली, या फिर खास किसी विशेष कोड-भरी शैली जैसे कि बनारस के पंडों की। अक्सर देखा गया है कि ये शैलियाँ एक विशेष संदर्भ में ही प्रयोग होती है और उसके बाहर नहीं। वक्ता और श्रोता दोनों ही इस शैली से भली-भाँति अवगत होते हैं। इन सब शैलियों में से विज्ञापन की शैली पर खास शोध हुआ है। आइए इस पर एक नज़र डालें।

विज्ञापन की भाषा

विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य है वस्तु की विक्रय शक्ति को बढ़ाना। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए भाषा को नाना प्रकार से सजाकर आकर्षक बनाया जाता है। उदाहरणतया, विज्ञापनकर्ता विज्ञापन की भाषा को उपमा, अलंकार, मुहावरों, लोकोक्तियों व तुकबंदियों से सजाता है एवं कई नए-नए प्रयोग करता है। विज्ञापन की भाषा एक तरफ़ तो विशेषणों और क्रिया विशेषणों से भरी होती है और दूसरी ओर निवेदनार्थक और निश्चयार्थक भी होती है। हिंदी के 'कल' शब्द का जो कि भूत और भविष्य दोनों के लिए प्रयोग होता है। उदाहरण देखिए :

'कल भी, आज भी, कल भी' (यह VIP Suitcase का विज्ञापन है) बहुत ही सुंदर और संक्षिप्त।

प्रायः विज्ञापन क्रियावहीन होते हैं और इसलिए सारा जोर संज्ञा-पद पर होता है। आश्चर्य नहीं कि संज्ञा-पद अक्सर लम्बे-लम्बे होते हैं। उदाहरणतया :

1. 'फैशनेबल महिलाओं की एक ही पसंद .... विपुल साड़ियाँ'
2. 'कीमत में 20 प्रतिशत काम पर काम में वैसा ही उत्तम'
3. 'भला उसकी साड़ी मेरी साड़ी से सफेद कैसे? - सुपर रिन का कमाल'

6.3.2 कोड–अंतरण और मिश्रण

व्यक्ति द्विभाषिता की स्थिति में जिस भाषा रूप का (जैसे भाषा 1 या भाषा 2 का) उपयोग करता है, वह कोड (code) कहलाता है। द्विभाषिता के प्रभाव के कारण वह कभी दोनों कोडों का बारी-बारी उपयोग करता है जैसे :

मैंने उनसे बात की थी। He will help you.
आप बिल्कुल चिंता न करें।

इस प्रवृत्ति को कोड अंतरण (code transfer) कहा जाता है।

कभी आपने गौर किया है कि दूरदर्शन पर आने वाले विज्ञापन भी दो भाषाओं में किस चतुरता से बाँटे जाते हैं। कपड़े धोने के साबुन का विज्ञापन सदैव हिंदी में या अन्य किसी प्रांत की भाषा में होगा पर नहाने के साबुन का विज्ञापन प्रायः अंग्रेज़ी में ही होगा। यह अलग शोध का विषय है कि बहुभाषिक समाज में हम किस भाषा से जनता के किस भाग तक पहुँचने की कोशिश करते हैं।

विज्ञापन की भाषा की चर्चा करते समय यह जरूरी हो जाता है कि आपको यह बता दें कि आधुनिक युवा पीढ़ी एक परिप्रेक्ष्य में एक भाषा के प्रयोग करने की अपेक्षा एक ही परिप्रेक्ष्य में दो भाषाओं के बीच कोड-परिवर्तन करना अधिक पसंद करती है। उदाहरण के लिए देखिए निम्नलिखित विज्ञापन जो आज की पीढ़ी के लिए ही दूरदर्शन पर प्रसारित होता है :

'गोरापन without soft त्वचा?
जैसे party without boys' (ponds cream)

कोड मिश्रण (code mixing) किन्हीं दो या तीन भाषाओं में हो सकता है। गम्पर्ज (1982 : 59) कोड-मिश्रण की परिभाषा यूँ देते हैं 'जब एक ही भाष्य (utterance) में दो विभिन्न भाषाओं के व्याकरणिक और उप-व्याकरणिक व्यवस्था का तालमेल हो'। पिछले तीस वर्षों में कोड-मिश्रण काफी शोध और चिंतन का विषय रहा है। एक ही वाक्य में क्या परिवर्तित हो सकता है और क्या नहीं, कोड-परिवर्तन क्यों होता है और इस मिश्रण के क्या आयाम हैं, या फिर समाज का कौन-सा वर्ग अधिक मात्रा में कोड-मिश्रण करता है और कौन-सा कम मात्रा में आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर ढूँढने का प्रयास किया गया है। कुछ भाषावैज्ञानिक कोड-मिश्रण के लिए दो भाषाओं का होना ही आवश्यक नहीं मानते वरन् दो विभिन्न शैलियों या बोलियों के अंतर्गत हुए परिवर्तन को भी कोड-मिश्रण का ही अंग मानते हैं (रोमेन 1989 : 111)। रोमेन ने प्रवासी पंजाबियों की भाषा में संयुक्त क्रियाओं के कोड परिवर्तन पर शोध किया और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वाक्य का अंतिम शब्द जो कि क्रिया में अंत में होता है हमेशा पंजाबी का रहता है पर उसके पहले वाले शब्द जो संज्ञा या विशेषण हो हैं अंग्रेजी के होते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी पूरा-का-पूरा उपवाक्य अंग्रेज़ी से लिया जाता है, फिर अंत में पंजाबी की क्रिया लगाई जाती है। उदाहरण के लिए देखिए :

1. Parents पे depend होंदा ए
   'वे अपने माता-पिता पर निर्भर है'

2. ओ अपनी own language नूं look down upon करन।
   'वे शायद अपनी ही भाषा को नीचा देखें'

3. जित्थे वी education दी गल आंदी ए, ओ help करदे ने।
   'जब भी पढ़ाई की बात आती है, वे मदद करते हैं।'

भाषावैज्ञानिकों के लिए यह खिचड़ी बड़ी दिलचस्प होती है क्योंकि इससे संप्रेषण की गहराई तक तो पहुँचा ही जा सकता है, इसके शोध से मूलभाषा के व्याकरण की मुख्य व्याकरणिक इकाइयों के बारे में भी ज्ञान अर्जित किया जा सकता है। जैसे कि हिंदी की अनेकानेक संयुक्त क्रियाएँ (conjunct verbs) जो कि विशेषण/ संज्ञा + क्रिया से बनती हैं - बड़ी आसानी से अंग्रेज़ी की संज्ञा और उसके विशेषण से कोड परिवर्तित हो जाता हैं। उदाहरणतया :

(क) work करती हूँ। [सं. (अं.) + क्रिया (हि.)]
(ख) hard work करती हूँ। [वि., सं. (अं.) + क्रिया (हि.)]
(ग) daily hard work करती हूँ। [क्रि.वि., वि.,सं. (अं.) + क्रिया (हि.)]
(घ) exam pass करना [संज्ञा + क्रिया. (अं.) + operator (हि.)]

गौर करें, (घ) में कैसे 'करना' लगाते ही अंग्रेज़ी की क्रिया pass संज्ञा का रूप ले लेती है जिसमें हिंदी की operator क्रिया 'करना' लग सकती है।

6.3.3 बहुभाषिता से जन्मी पिजिन, क्रियोल और मिश्रित भाषाएँ

किसी भी बहुभाषा-भाषी समाज या देश में कोई न कोई भाषा ऐसी तो होती है जो संप्रेषण के धरातल पर संपर्क भाषा का काम करती है। इसे 'लिंगुआ फ्रेंका' के नाम से जाना जाता है। प्रायः यह संपर्क-भाषा मानक रूप में प्रयोग नहीं होती और उसमें प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के पुट शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए भारतवर्ष के अधिकांश प्रांतों में हिंदी एक संपर्क-भाषा के रूप में साधारण और रोज-मर्रा के जीवन में प्रयुक्त होती है। यह अवश्य है कि राजस्थान की संपर्क भाषा हिंदी और हिमाचल की संपर्क भाषा हिंदी एवं बैंगलोर या मुम्बई की संपर्क भाषा हिंदी की अपनी-अपनी कई विशेषताएँ हैं। जैसे जल अपना रूप बर्तन के हिसाब से बदल लेता है, गोल बर्तन में गोल, ऊँचे-लम्बे बर्तन में ऊँचा आदि आदि। उसी प्रकार संपर्क-भाषा हिंदी हर प्रांत और और प्रदेश में उस प्रांत की मुख्य भाषा के अनुरूप ढल जाती है और कुछ नई छटा लिए होती है। यह उस भाषा के

'लचीलेपन' की विशेषता के कारण है। अंग्रेज़ी आज विश्व की संपर्क-भाषा के रूप में जानी जाती है। कैनेडा में फ्रेंच और अंग्रेज़ी दोनों ही संपर्क भाषा का कार्य करती है पर यह कोई आवश्यक नहीं कि संपर्क भाषा ऐसी भाषा हो जो पहले से ही किसी समुदाय की मातृभाषा हो। व्यापारिक संदर्भों में जब व्यापार करने वाले कई भाषा-समुदाय एक साथ एक स्थान पर एकत्रित हो जाएँ तो एक नई भाषा का भी जन्म हो जाता है जिसमें शब्द व्यवस्था एक भाषा की, ध्वनि व्यवस्था और वाक्य-व्यवस्था किसी अन्य भाषा की हो सकती है। ऐसी भाषा जिसका जन्म मात्र व्यापारिक आवश्यकता के कारण हुआ हो या फिर एक समुदाय का किसी दूसरे समुदाय पर आर्थिक या राजनीतिक शासन करने की इच्छा से हुआ हो, तो उस भाषा को पिजिन कहते हैं। दो बातें विशेष ध्यान रखने योग्य हैं। प्रथम तो यह कि पिजिन किसी की मातृभाषा नहीं होती, और दूसरे यह कि पिजिन का व्याकरण दो या तीन भाषाओं के व्याकरण का साधारणीकृत रूप होता है। प्रायः इसकी शब्द सम्पदा सीमित होती है और भाषा-वैविध्य 'ना' के बराबर होता है। विश्व में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, डच, स्पैनिश, पुर्तगाली, अरबी और स्वाहिली पर आधारित पिजिन भाषाएँ हैं। एक हवाई पिजिन अंग्रेज़ी का नमूना देखिए :

1. दा पुअर पीप्ल ऑल पोतेईतो ईत (पिजिन-रूप)
   the poor people all potato eat (अंग्रेज़ी शाब्दिक अनुवाद)
   'the poor people eat only potatoes' - अंग्रेज़ी अनुवाद
   'गरीब लोग मात्र आलू खाते हैं'

ध्यान दें कि पिजिन-भाषा में हिंदी की ही भांति क्रिया वाक्य के अंत में आ रही है क्योंकि उक्त वाक्य एक जापानी द्वारा बोला गया था और जापानी में भी क्रिया वाक्य के अंत में आती है।

जब पिजिन की अवधि इतनी लंबी हो जाए कि आगे आने वाली पीढ़ी मात्र पिजिन ही बोलती हो वह भाषा रूप उस समुदाय का मानक रूप हो जाता है और तो उनकी भाषा 'क्रियोल' कहलाती है। अर्थात् क्रियोल किसी न किसी समुदाय की मातृभाषा होती है और उसकी शब्द सम्पदा और उसका वाक्य विन्यास पिजिन की भांति सीमित और साधारणीकृत नहीं होता। क्रियोल का शब्द-भंडार काफ़ी विस्तृत होता है और व्याकरणिक नियम भी किसी अन्य सामान्य भाषा की भांति जटिल होते हैं। आस्ट्रेलिया के केप-योर्क पेनिनसुला के उत्तरी भाग में बोली जाने वाली क्रियोल [क्राओली और रिग्जबाय (1979)] के उदाहरण देखिए :

1. नो गुड 'bad' = बुरा (अं no good)
2. बैलीरन 'diarrhoea' = दस्त (अं beely un)
3. बैलीअप 'on you back' = पीठ पर (अं. belly up)
4. आई नो गुड 'blind' = अंधा (अं. eye no good)
5. तालिंगा नो गुड 'dear' = बहरा (अं. telling no good)
6. इम बीन रैन 'he ran' = वह दौड़ा (अं. him been ran)

भाषावैज्ञानिकों का मत है कि पिजिन से क्रियोल की यात्रा क्रियोल पर आकर समाप्त नहीं हो जाती वरन् क्रियोल धीरे-धीरे मानक-भाषा की तरफ़ अग्रसर होती है और अंततः किसी एक विशेष प्रांत की या समुदाय की मानक भाषा पर आकर टिक जाती है। यह चक्रीय यात्रा (बिकरटन 1975, नारो 1979 : 868) एक प्रकार से मानव-जाति के Bioprogram का परिणाम है। क्रियोल की जटिलता हमारी अंतर्निहित भाषिक क्षमता की देन है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव-मस्तिष्क पहले से ही इस तरह गठित है कि धीरे-धीरे भाषा के विस्तार में जटिलताओं को जन्म देता है। यह एक प्राकृतिक व्यवस्था है। राँची के बाज़ारों में

बोली जाने वाली सदरी या सदनी भी एक प्रकार की पिजिन है जिसमें हिंदी, पखड़िया और ओराँव का मिश्रण है। धीरे-धीरे अब इसने क्रिओल का रूप ले लिया है।

6.4 भाषा : क्षरण, अनुरक्षण और संघर्ष

समाजभाषाविज्ञान में भाषाओं को जीवंत संगठन माना जाता है। भाषाएँ कभी लुप्त हो जाती हैं, जिसे क्षरण कहा जाता है। अर्थात् भाषा बोलने वाले दूसरी प्रमुख क्षेत्र में रहते हुए अपनी भाषाओं को छोड़ देते हैं और दूसरी प्रमुख भाषा को अपना लेते हैं। यह बात भाषा की बोलियों पर भी लागू होती है। इसके विपरीत भाषाओं के संदर्भ में, विशेषकर बहुभाषिक स्थिति में भाषाओं के अनुरक्षण (maintenance) का भी उदाहरण मिलता है। जैसे सूरत से तमिलनाडु में बसे गुजरातियों ने सैकड़ों सालों से अपनी भाषा को सुरक्षित रखा है। इसे वे 'सौराष्ट्री' नाम देते हैं। इसी तरह तमिलनाडु से 1000 वर्ष पहले कर्नाटक में जा बसे तमिलभाषियों ने तमिल को सुरक्षित रखा है जिस वे 'संकेती' कहते हैं। कुछ हद तक कह सकते हैं कि भारतीय समाज की बहुभाषिकता इतनी लचीली है कि (और इसकी संस्कृति सबको अपने में समेटती है कि) भाषाओं का अनुरक्षण अपने आप में हो जाता है।

बहुभाषिता में भाषाओं के संघर्ष की भी स्थिति आती है, विशेषकर तब जब लोगों को अपना भाषिक हित प्रभावित होता दिखाई दे। यह संघर्ष आमतौर पर प्रमुख (dominant) भाषा और गौण भाषा के बीच दिखाई देता है। यहाँ भी भारतीय संस्कृति के लचीलेपन और समावेश (accommodation) की प्रवृत्ति के कारण भारतीय भाषाओं में आदान-प्रदान ज्यादा रहा है और संघर्ष की स्थिति कम रही है।

अगर आप इस संदर्भ में और जानना चाहें, तो संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन कर सकते हैं।

6.5 भाषा और सामाजिक संदर्भ

भाषा समाज की वस्तु है, समाज द्वारा निर्मित व्यवस्था है। इस तरह भाषा और समाज के अभिन्न संबंध की बात कह सकते हैं। वैसे मानवों के अन्य सामाजिक आदि व्यवहारों की तरह भाषा को भी हम व्यवहार मान सकते हैं। इस अर्थ में भाषा भी एक सामाजिक संस्था (social institution) है। इस संदर्भ में हम भाषा के सामाजिक संदर्भ की अलग से क्यों चर्चा करें?

समाज का अपना संगठन है, भाषा की अपनी संरचना है। हम अक्सर देखते हैं कि सामाजिक संगठन के कारण भाषा के तत्व निर्मित होते हैं जैसे भारतीय परिवार के सुव्यवस्थित संगठन के कारण हमारे पास अंग्रेज़ी के मुकाबले अधिक रिश्ते के शब्द हैं। इस तरह परस्पर जुड़े हुए कई क्षेत्र हैं, जहाँ भाषा और समाज एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रकरण में हम संबोधन की शब्दावली, रिश्ते-नाते के शब्द तथा रंगों के शब्दों की चर्चा करेंगे।

6.5.1 संबोधन के शब्द

वार्तालाप का प्रारंभिक वाक्य बड़ा ही दिलचस्प होता है। विदेशों में मात्र प्रारंभिक वाक्यों पर बहुत शोध हुआ है। भिन्न-भिन्न भाषाओं के भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रारंभिक वाक्य होते हैं और वे हमारी सामाजिक अंतःक्रिया (social interaction) की सजीव तस्वीर खींच देते हैं। कभी आपने गौर किया है कि हम अपने मित्रों, स्वजनों, बच्चों, बड़ों और राह में चलते अनजान व्यक्ति से क्या शब्द कहकर संबोधन करते हैं और क्यों? अनजान व्यक्ति हो तो हम कुछ इस तरह के वाक्यों से उसका ध्यान अपनी ओर खींच सकते हैं :

- भई सुनना ज़रा.....
- सुनिए .....
- बहनजी, एक मिनट .....
- सुनो .....

परस्पर जानने वाले दो व्यक्तियों की इसके अतिरिक्त 'संबोधन शब्दावली' संबोधित व्यक्ति के पद, उम्र, लिंग, स्थान और आपसी अंतरंगता से निर्धारित होती है। संबोधन के रूपों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) प्रत्यक्ष

(क) नामों और नामों की समन्विति

(ख) नाते-रिश्तेदारों के लिए प्रयुक्त संबोधन।

(ग) द्वितीय पुरुष सर्वनाम।

(2) अप्रत्यक्ष

(क) वे संबोधन जिससे संबोधित व्यक्ति का सामाजिक संबंध संबोधन करने वाले व्यक्ति या अन्य किसी के साथ ज्ञात हो।

(ख) वे उपवाक्य जिससे संबोधित की अस्मिता का ज्ञान न हो।

यहाँ हम विस्तार से चर्चा मात्र 'प्रत्यक्ष' रूपों के (क) एवं (ख) की करेंगे।

प्रत्यक्षः (क) नामों और नामों की समन्विति जैसे कि शुभ नाम, मध्यम और जातीय नाम (surname), व्यवसायी नाम एवं आदरसूचक शब्द जो इन नामों के आगे (न. 1) और पीछे (न. 2) अथवा दोनों लग सकते हैं उदाहरणतयाः

(श्रीमती)$_1$ अनुराधा कुमारी अग्रवाल (जी)$_2$

कोष्ठक में दिए गए आदरसूचक शब्द वैकल्पिक हैं क्योंकि इनके प्रयोग के पीछे दो लक्षण निहित हैं - आदर और औपचारिकता। हिंदी में कुछ आदरसूचक शब्द ऐसे भी हैं जो नामों की शृंखला के आगे या पीछे लग सकते हैं। उदाहरणतयाः बाबू, लाला। देखिएः

(बाबू/ लाला) ध्यान चन्द गोयल (बाबू/ लाला)

परंतु 'श्रीमती' 'श्री' और 'जी' का स्थान निर्धारित है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी आदर सूचक नं. 2 प्रायः पाया जाता है, जैसे कि तेलुगु में 'सुब्बा राव गारु'।

नामों की शृंखला में हिंदी में 'पुकार नाम' का बहुत प्रचलन है जो प्रायः 'शुभनाम' के बिगड़े हुए रूप होते हैं, जैसे कि :

राजेन्द्र कुमार > राजेन्द्र > राजेन > राज > राजू।

इसके अतिरिक्त अनर्गल शब्दों से रचित शब्द भी 'पुकार-नाम' के रूप में प्रचलित होते हैं। उदाहरणतया डब्बू, पिंकी, बंटू, चुन्नू, टुनटुन आदि। कौन-सा नाम कहाँ और किस स्थिति में प्रयोग किया जाए इसके विशेष नियम हैं। अतः 'राजू' से 'श्री राजेंद्र कुमार जी' की यात्रा तभी की जा सकती है जब प्रयुक्ति नियम औपचारिकता, आदर और सम्मान जैसे लक्षण से बद्ध हों।

6.5.2 नाते-रिश्तेदारों के लिए प्रयुक्त संबोधन

हमारो रिश्ते दो प्रकार के होते हैं -पहले तो वे जो समान रक्त या वंशगत हों (non-affinal) और दूसरे जो विवाह-जन्य (affinal) हों। इन दोनों प्रकार के रिश्तों की संबोधन पद्धति चाहे एक सी हो परंतु उनकी संदर्भ शब्दावली (referenced terms) भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए देखिए तालिका-1.

तीसरी पीढ़ी तक आते-आते संबोधन शब्दावली प्रथम नाम तक ही सीमित रह जाती है। सम-रूपी संबंधों की संबोधन शब्दावली भी एक ही है। अतः 'साली' और 'ननद' दोनों को 'जीजी' के नाम से यदि वे बड़ी हैं तो, अन्यथा प्रथम नाम से संबोधित किया जा सकता है। उसी प्रकार 'जीजा' एवं 'नन्दोई' को लिए एक ही प्रकार की संबोधन शब्दावली का प्रयोग किया जा सकता है। 'जिठानी' और 'भाभी' भी इसी शृंखला में जोड़े जा सकते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि संदर्भ शब्दावली और संबोधन शब्दावली किस स्थिति की द्योतक है? हमें इनके अध्ययन से किस प्रकार की जानकारी हासिल होती है? यदि आप ध्यान से देखें तो ज्ञात होगा कि विवाह के बाद स्त्री को और उसके बच्चों को दो-दो, भिन्न-भिन्न संदर्भ रूपों से वास्ता पड़ता है। उदाहरणतया पति का छोटा भाई 'देवर', पर बड़ा भाई 'जेठ' और पति के छोटे भाई की पत्नी 'देवरानी' पर पति के बड़े भाई की पत्नी 'जिठानी'। उसी प्रकार पिता के बड़े भाई 'ताऊ' और उनकी पत्नी 'ताई' पर पिता से छोटे भाई 'चाचा' और उनकी पत्नी 'चाची'। इस प्रकार के बड़े छोटे संबंधों के भिन्न-भिन्न रूप मायके में नहीं होते। बड़े भाई की पत्नी और छोटे भाई की पत्नी दोनों ही 'भाभी'। या फिर पत्नी के बड़े भाई और छोटे भाई दोनों ही 'साला' के नाम से ही संदर्भित होते हैं। यही स्थिति पत्नी की बड़ी एवं छोटी बहनों की है - दोनों ही 'साली' के नाम से जानी जाती हैं। इस अलग-अलग पद्धतियों का कारण है कि हिंदी-भाषी समाज पति-स्थानिक एवं पितृ-स्थानिक है। विवाह के बाद स्त्री का पूर्ण समय ससुराल में ही बीतता है। अतः उसके संबंधों की संदर्भ सूची भी विविध है। आप कल्पना कर सकते हैं कि यदि समाज 'मातृ-स्थानिक' या 'पत्नी-स्थानिक' हो (जैसे कि मेघालय में खासी-भाषी) तो उनकी संदर्भ शब्दावली हिंदी भाषियों से कितनी भिन्न होगी।

तालिका-1

नाते रिश्तेदारों की संबोधन एवं संदर्भ शब्दावली

वंशगत/ रक्त संबंध		**विवाह-जन्म संबंध**
संबोधन एवं संदर्भ समरूपी	*संबोधन एवं संदर्भ भिन्न*	
पूर्व पीढ़ी	संदर्भ रूप	संबोधन रूप
	पूर्व पीढ़ी	
1. नाना	1. सास	माता जी
2. नानी	2. ससुर	पिता जी
3. दादा	समकालिक पीढ़ी	
4. दादी	3. साला	भैया, भाई साहब
5. माता (जी)	4. साली, ननद	जीजी, दीदी, बहन जी
6. पिता (जी)	5. जेठ	भाई साहब, भाई जी
7. ताऊ	6. जिठानी	दीदी, भाभी
8. चाचा	7. देवरानी	प्रथम नाम
9. मामा	8. देवर	प्रथम नाम (जी)
10.बुआ	9. भाभी	भाभी, प्रथम नाम
11.मौसी	10.नन्दोई (बड़े)	जीजा जी
समकलिक पीढ़ी	11.नन्दोई (छोटे)	प्रथम नाम+जी
12.भाई (साहब)	12.बहू	बहू
भैया (जी)	13.दामाद	दामादजी/बाबू, प्रथम नाम+जी
13.बहन (जी)	उत्तर पीढ़ी	
जीजी, दीदी	14.भतीजा	प्रथम नाम

उत्तर पीढ़ी			
14.बेटा		15.भतीजी	प्रथम नाम
15.बेटी		16.भानजा	प्रथम नाम
		17.भानजी	प्रथम नाम
		18.पोता/ पोती	प्रथम नाम
		19.नाती/ नातिन	प्रथम नाम
		20.धेवता	प्रथम नाम
		21.धेवती	प्रथम नाम

संबंधों को एक, दो या तीन बंधनों में बाँधा जाता है। जब एक व्यक्ति विशेष का किसी दूसरे व्यक्ति से ठीक सीधा संबंध हो (बिना किसी अन्य व्यक्ति के बीच में आए) तो उसे प्राथमिक संबंध कहते हैं। यदि एक व्यक्ति का संबंध किसी अन्य व्यक्ति से ठीक सीधा न होकर किसी दूसरे व्यक्ति के माध्यम से हो तो उस संबंध को द्वितीयक संबंध कहते हैं। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति विशेष का संबंध किसी अन्य व्यक्ति से एक नहीं वरन् दो व्यक्तियों के माध्यम से हो तो उसे तृतीयक संबंध कहते हैं। उदाहरणतया हमारा संबंध अपने माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री से सीधा प्राथमिक संबंध है पर दादा, दादी, पोता, पोती वगैरह से द्वैतीयक है और परदादा, परदादी या फुफेरे भाई/ बहन, मौसेरे भाई-बहन से त्रैतीयक है। यदि हम एक गोल चिह्न को 'मैं' की संज्ञा दें तो इसे निम्नलिखित प्रकार से समझाया जा सकता है। हर (तीर) को एक संबंध मानिए जो पीढ़ी का भी हो सकता है और समकालिक भी।

प्राथमिक बंध

$O \rightarrow$ माँ = माँ/ माता

$O \overset{1}{\rightarrow}$ पुत्र/ पुत्री = बेटा/ बेटी

द्वितीयक बंध

$O \overset{1}{\rightarrow}$ पिता $\overset{2}{\rightarrow}$ पिता = दादा

$O \overset{1}{\rightarrow}$ पुत्र $\overset{2}{\rightarrow}$ पुत्र = पोता

तृतीयक बंध

$O \overset{1}{\rightarrow}$ पिता $\overset{2}{\rightarrow}$ पिता $\overset{3}{\rightarrow}$ पिता = परदादा

$O \overset{1}{\rightarrow}$ माँ $\overset{2}{\rightarrow}$ बहन $\overset{3}{\rightarrow}$ बेटी = मौसेरी बहन

अतः 'मौसेरी बहन' तृतीयक बंध का उदाहरण है क्योंकि वह मेरी(0) माँ (1) की बहन (2) की बेटी (3) है।

द्वितीयक और तृतीयक संबंधों को तालिकाओं में दिया जा सकता है। देखिए तालिका नं. 2

तालिका-2 : द्वितीयक संबंध

प्रथम बंध	द्वितीय बंध	रक्त-संबंध						वैवा. संबंध	
		पूर्व पीढ़ी		सम. पीढ़ी		उत्तर पीढ़ी		सम. पीढ़ी	
		पिता	माता	भाई	बहिन	पुत्र	पुत्री	पति	पत्नी
	पूर्व पीढ़ी	पिता माता	दादा नाना	दादी नानी	ताऊ चाचा मामा	बुआ मौसी			
रक्त संबंध	समकालिक पीढ़ी	भाई बहिन				भतीजा भानजा बहनौत	भतीजी भानजी बहनौत	बहनोई	आवाज
	उत्तर पीढ़ी	पुत्र				(पोता नाती)	पोती (नातिन)		बहू
		पुत्री				धेवता (नाती)	धेवती (नातिन)	दामाद	
वैवाहिक संबंध समकालिक पीढ़ी		पति	ससुर	सासु	जेठ देवर	ननद			
		पत्नी	ससुर	सासु	साला	साली			

तालिका के बीच में दिए गए सब संबंध नाम द्वितीयक संबंध के द्योतक हैं। तीर से दर्शाए गए सब संबंध-नाम प्राथमिक संबंध के द्योतक हैं।

इसी प्रकार तृतीयक संबंध भी एक तालिका में बाँधे और देखे जा सकते हैं। देखिए तालिका सं. 3 :

तालिका-3 : तृतीयक संबंध
(तृतीयक स्तर)

प्राथमिक बंध / द्वितीयक बंध		रक्त-संबंध						वैवाहक संबंध	
		पिता	माता	भाई	बहिन	पुत्र	पुत्री	पति	पत्नी
	दादा	परदादा	परदादी	✓	✓				
	दादा	परदादा	परदादी	✓	✓				
र	नाना	परनाना	परनानी	✓	✓				
	नानी	परनाना	परनानी	✓	✓				ताई
क्त	ताऊ					चचेराभाई	चेचरीबहिन		चाची
	चाचा								
सं	बुआ					फुफेरा भाई	फुफेरी बहिन	फूफा	
	मामा					ममेरा भाई	ममेरी बहिन		मामी
बं	मौसी					मौसेरा भाई	मौसेरी बहिन	मौसा	
	भतीजा					✓	✓		भतीज बहू
ध	भतीजी					✓	✓		भतीज दामाद
	भानजा								भांजा बहू
	भानजी					✓	✓		
						✓	✓		भांज दामाद
	पोता (नाती)					पंती	पंतिन		नतबहू
	पोती (नातिन)					✓	✓		नत दामाद
	धेवता					✓	✓		ध्यौत बहू
	धेवती					✓	✓		ध्यौत दामाद
	भावज	✓	✓	✓	✓				
वि	बहनोई	✓	✓	✓	✓				
वा	बहू	समधी	समधिन	✓	✓				
ह	दामाद	समधी	समधिन	✓	✓				
ज	ससुर	ददिया ससुर	ददिया सासु	चचिया ससुर	फुफिया सासु				
न्य	सासु	ननिया ससुर	ननिया सासु	ममिया ससुर	मुसिया सासु				
सं	जेठ					जैठौत	जेठौत		जेठानी
बं	देवर					देवरौत	देवरौत		देवरानी
ध	ननद					✓	✓	ननदोई	
	साला					✓	✓		सहलज
	साली					✓	✓	साढू	

स्रोत : भोलानाथ तिवारी, 'हिंदी भाषा की सामाजिक रचना' (1994 : 169)

6.5.3 रंगों के शब्द

हम सब जानते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक रंग पहचानती हैं, क्योंकि उन्हें वस्त्राभूषणों के संदर्भ में अधिक रंगों से वास्ता पड़ता है। इस तरह रंग की पहचान व्यक्ति सापेक्ष है, सिर्फ़ भौतिक क्षमता नहीं है।

इस तरह भाषाओं में रंगों की शब्दावली समाज सापेक्ष भी होती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अलग-अलग समाज अलग-अलग ढंग से रंगों को पहचानता है और उनके लिए शब्द निर्मित करता है। यह भौतिक सत्य है कि रंग एक पट्टिका के रूप में क्रम से दिखाई देते हैं। भौतिक विज्ञानी इंद्रधनुष के सात रंगों की बात कहते हैं – ऊदा, indigo नीला, हरा, पीला, orange तथा लाल। इन सबके मेल से सफ़ेद बनता है, सबके अभाव में काला। आपने देखा होगा कि दो शब्दों के हिंदी रूप नहीं हैं, क्योंकि हम केवल चार या पाँच रंगों में अंतर करने के आदी हैं। संसार में ऐसी भी भाषाएँ हैं, जहाँ नीला तथा हरा को एक ही शब्द से सूचित किया जाता है, क्योंकि इनमें अंतर करना वे आवश्यक नहीं समझते।

भाषाओं में रंग संबंधी शब्दों में अंतर यह स्पष्ट करता है कि किस तरह भौतिक तथ्यों को भी हर समाज अपने ढंग से देखता और वर्णित करता है।

6.6 हिंदी में भाषा वैविध्य

भारतवर्ष के लिए यह प्रसिद्ध है कि 'यहाँ' दस कोस पे पानी और बीस कोस पे बानी' बदल जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो वास्तव में तथाकथित 'हिंदी प्रदेश' की हिंदी भी एक-सी नहीं है। देखिए मानचित्र सं.1– भारत का हिंदी-क्षेत्र (पृ.....)। हर प्रांत की हिंदी भिन्न है। यही नहीं, जब हिंदी समूचे भारतवर्ष में जन-संपर्क की भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है तो भी कुछ भिन्नताएँ आ जाती हैं मसलन बंबइया हिंदी, कलकतिया हिंदी, हैदराबादी हिंद, दिल्ली की हिंदी आदि। आइए सर्वप्रथम देखें हिंदी प्रदेश की हिंदी और उसकी बोलियों को। 'हिंदी प्रदेश' में छह प्रांत शामिल हैं : उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान एवं हिमाचल प्रदेश। यद्यपि विभिन्न प्रांतों की हिंदी भी भिन्न-भिन्न प्रकार की है परंतु बोधगम्यता की कड़ी उन्हें एक माला में पिरोती है। हाँ, यह अवश्य है कि यह बोधगम्यता सभी प्रांतों में एक सी नहीं है। कहीं ज्यादा और कहीं कम - प्रश्न डिग्री का है। उदाहरणतया एक राजस्थानी व्यक्ति हरियाणावासी की हिंदी को हिमाचली की हिंदी की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में समझेगा। हिंदी की पाँच उपभाषाएँ हैं :

(क) पश्चिमी हिंदी
(ख) राजस्थानी हिंदी
(ग) पूर्वी हिंदी
(घ) बिहारी हिंदी
(ड.) पहाड़ी हिंदी

यहाँ यह बता देना आवश्यक होगा कि इन उप-भाषाओं का वर्गीकरण किसी व्याकरणिक दृष्टि से नहीं किया गया है। इन पाँच भागों में हिंदी भाषा का वर्गीकरण मात्र इसके प्रयोग-क्षेत्र या राजनीतिक भू-खण्ड से संबंधित है। अतः हिंदी प्रदेश के पूर्व भाग में बोली जाने वाली हिंदी 'पूर्वी हिंदी' और राजस्थान में बोली जाने वाली हिंदी 'राजस्थानी हिंदी' आदि।

(क) पश्चिमी हिंदी

इसके अंतर्गत छह प्रमख बोलियाँ आती हैं :

खड़ी बोली या कौरवी, हरियाणवी या बाँगरू, दक्खिनी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली मेरठ के आसपास बोली जाने वाली खड़ी बोली के अंतर्गत साहित्यिक हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी भी हैं। दक्खिनी, हालांकि दक्षिण में बोली जाती है पर खड़ी बोली पर आधारित होने के कारण पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत आती है। ब्रज मथुरा-आगरा में बोली जाती है एवं भक्तिकाल के कवियों की प्रिय भाषा रही है।

(ख) राजस्थानी हिंदी

इसकी पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं - मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, एवं गूजरी। पश्चिम राजस्थान में बोली जाने वाली मारवाड़ी का क्षेत्र काफी व्यापक है। यही नहीं हाल में किए

गए शोध से ज्ञात होता है कि समूचे भारत-वर्ष में हिंदी के अतिरिक्त यदि केई भाषा द्वितीय भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है तो वह है मारवाड़ी। प्रसार और साहित्य-सृजन की दृष्टि से भी इसका क्षेत्र व्यापक रहा है। मारवाड़ी में सर्वनामों की अत्यधिक विविधता है। राजस्थानी भाषा क्षेत्र के लिए देखिए मानचित्र 2.

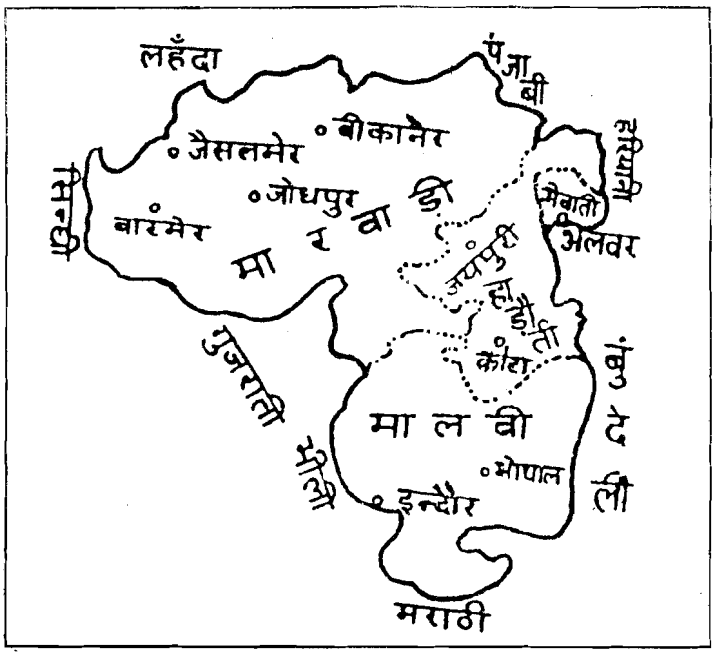

मानचित्र 2 : राजस्थानी भाषा क्षेत्र

स्रोत : दी.प. जैन एवं कै तिवारी, 1972

(ग) पूर्वी हिंदी

इसकी तीन प्रमुख बोलियाँ हैं - अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी। साहित्य की दृष्टि से अवधी भाषा सबसे अधिक अलंकृत हुई है। सूफी काव्य एवं राम-काव्य की रचना की भाषा अवधी ही है।

(घ) बिहारी हिंदी

इसके अंतर्गत भोजपुरी, मगही और मैथिली बोलियाँ आती हैं। यूं ये तीनों बोलियाँ बिहार राज्य में बोली जाती हैं पर भोजपुरी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले में भी बोली जाती है। देखिए मानचित्र 3. चूँकि इन भाषाओं का जन्म मागधी अपभ्रंश से हुआ है, भाषा वैज्ञानिक मैथिली जैसी भाषाओं का बंगला, उड़िया और असमिया से संबंध जोड़ते हैं। साहित्यिक दृष्टि से मैथिली प्रमुख है।

मानचित्र 3 : भोजपुरी भाषा क्षेत्र

(ड.) पहाड़ी हिंदी

इसके अंतर्गत पहाड़ी क्षेत्र (हिमाचल व उत्तर प्रदेश) की गढ़वाली और कुमायूँनी आती है। इन भाषाओं में लोक साहित्य की विपुलता है।

आइए अब संक्षेप में एक नज़र डालें हिंदी के उन विविध रूपों पर जो महानगरों में प्रयुक्त होती है।

पहले बताया जा चुका है कि हिंदी देश की जन-संपर्क की भाषा बनती जा रही है। हाल में किए गए शोध (K.S. Sing, 'people of India') से पहली बार हमारे सामने आँकड़ों में यह तथ्य उजागर हुआ है कि देश की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या हिंदी का प्रयोग 'प्रथम भाषा' के रूप में करती है। यदि इसमें हम उन भाषा-भाषियों को भी जोड़ दें जो हिंदी का प्रयोग 'द्वितीय' या 'तृतीय' भाषा के रूप में करते हैं तो संख्या कहीं अधिक बैठेगी। कहने का आशय यह है कि यदि कोई एक भाषा है जो देश की राष्ट्रीय-भाषा है, जिसे जन समूह पारस्परिक संप्रेषण के लिए प्रयोग करता है तो वह है हिंदी और उसके नाना प्रकार। जब भी हिंदी भाषी हिंदी का प्रयोग पारस्परिक संप्रेषण के लिए करते हैं तब हिंदी एक नया ही रूप ले लेती है जो मानक हिंदी से काफी भिन्न व इतर होता है। इस प्रकार की स्थानीय हिंदी वहाँ की संस्कृति एवं अंतर्जातीय संपर्क का प्रतीक होती है। शैलेश मटियानी का उपन्यास 'कबूतरखाना' एवं जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का उपन्यास 'मुरदाघर' बंबइया हिंदी के उदाहरण हैं। बंबइया हिंदी पर मराठी भाषा का प्रभाव साफ़ दृष्टिगोचर होता है। हिंदी के शब्दों में 'ह' का लोप एवं शब्द के दूसरे महाप्राण स्वन का अल्पप्राणीकरण मराठी की विशेषता है। अतः पोंचना (पहुँचना), भोत-बोत (बहुत), पेला (पहला), पेनना (पहनना), भूका (भूखा), झूटा (झूठा), धंदा (धंधा), धोका (धोखा) बंबइया हिंदी के उदाहरण हैं। सबसे रोचक भूतकाल क्रिया रूप है जैसे कियेला (किया), देखेला (देखा), पढ़ेला (पढ़ा) आदि। दूसरी

बात, परसर्ग तिर्यक रूप में नहीं प्रयुक्त होते हैं और एक अव्यय की भांति ही प्रयोग में आते हैं। अतः 'खाने का बारे में', 'लैन का बीच में' आदि। इतिवृत्तात्मक रचना मानक हिंदी से भिन्न 'बोल के' के प्रयोग के साथ होती है जैसे 'वो पूछा था तू किधर गयेला बोलके'। इसके अतिरिक्त हजारों नए शब्दों का जन्म हुआ है जो मराठी-गुजराती के करीब हैं। किसी भी बंबइया फिल्म में ऐसे शब्दों को सुना जा सकता है। उदाहरणतया बरोबर (ठीक), लफड़ा (झगड़ा), फोकट (मुफ्त), खलास (खत्म), बाई (औरत), बटाटा (आलू), खाली-पीली (बेकार), फोटो निकालना (खींचना), समझ पड़ना (समझ में आना) आदि। सही मायनों में देखा जाए तो सारे शब्द हिंदी शब्दकोश में होने चाहिए जो नहीं होते। (जगन्नाथन : 1981)

दिल्ली की हिंदी

यदि बंबइया हिंदी पर मराठी का प्रभाव है तो दिल्ली की हिंदी पर हरियाणवी एवं पंजाबी का। दिल्ली की हिंदी में /फ/ का लोप हो चुका है और /फ के स्थान /फ़/ का ही प्रयोग होता है। अतः सफल → सफ़ल, फिर → फ़िर, फूल → फ़ूल, फल → फ़ल आदि। मुझे और तुझे के स्थान पर 'मेरे को' अधिक प्रचलित है। और तो और पुरुष सर्वनाम 'आप ' के साथ 'आइए', 'खाए' क्रिया-रूपों का ह्रास हो गया है और 'आप आओ, आप खाओ' - का प्रचलन बढ़ गया है। ये उपवाक्य औपचारिकता और अंतरंगता के बीच की कड़ी है एवं दिल्ली-हिंदी की ही उपज है। इसी तरह पंजाबी के प्रभाव के कारण आदरणीय व्यक्ति के संदर्भ में लिंग की अन्विति भेदक लक्षण नहीं होती। 'मेरे माता जी कल कलकत्ते चले गए' जैसे वाक्य काफ़ी प्रचलित हैं। हरियाणवी के प्रभाववश 'मैंने जाना है', तैने स्कूल देखना है ' जैसे वाक्य प्रचलित हैं। 'मुझको जाना है' के स्थान पर 'मैंने जाना' संभावित भविष्य के प्रयोग हैं।

हैदराबाद की हिंदी

हैदराबादी हिंदी आज पूर्ण रूप से तेलुगु वाक्य विन्यास में ढल चुकी है। निम्नलिखित वाक्य हू-ब-हू तेलुगू वाक्य का अनुवाद लगता है :

1. 'कौन-सा बच्चा इम्तहान में फस्ट आता कि वो-इच बच्चा कू इनाम देते।'
2. 'कल आए सो आदमी का नाम क्या है?'
3. 'आए सो वो वाला आदमी।'

इसके अतिरिक्त जिन शब्दों का अंत व्यंजनों से होता है उन शब्दों के आगे 'आँ' लगाने से वे बहुबचन में परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरणतया : बात : बातॉं, किताब : किताबॉं, औरत : औरतॉं, लोग : लोगॉं आदि। हैदराबादी हिंदी में 'ने' का प्रयोग भी बहुत कम दीख पड़ता है। अतः 'मैं काम नको करा'। यही नहीं हैदराबाद की हिंदी की काफ़ी बड़ी शब्द संपदा मानक हिंदी की शब्द संपदा से भिन्न है। उदाहरणतया - कल्ले (गाल), जुट्टू (चोटी), पोट्टी (लड़की), जास्ती (ज्यादा), घट्ट (गाढ़ा), हौं (हाँ) एवं नको (नहीं) आदि इसी शब्द संपदा के उदाहरण हैं। दक्खिन की हिंदी पर कुछ शोध हुआ है (अरोडा : 1986, रूथ स्मिथ : 1981) पर अभी बहुत बाकी है।

देश की सीमाओं से बाहर हिंदी

यह सुनने में भले ही अजीब लगे कि हिंदी देश में ही नहीं वरन् देश के बाहर भी बोली, सुनी, पढ़ी और लिखी जाती है। अठारहवीं सदी से भारतीय मज़दूरों और व्यावसायिकों के रूप में त्रिनिदाद, फिजी, गयाना, मॉरीशस, सूरीनाम एवं दक्षिण अफ्रीका जाते रहे और वहाँ बसते रहे। अपनी अस्मिता बनाए रखने की प्रक्रिया में उन्होंने हिंदी अथवा उसकी कोई न कोई क्षेत्रीय बोली न केवल जनसंपर्क की भाषा के रूप में जीवित रखी वरन् आपस में जोड़ने वाली एक सांस्कृतिक कड़ी और भावनात्मक एकता के मूल आधार के रूप में भी हिंदी जीवित रखी। आज ये प्रवासी भारतीय हिंदी या भोजपुरी का प्रयोग करते हैं। संप्रति प्रवासी भरतीयों की संख्या मॉरीशस में 64% गयाना में 55% फीजी में 50% सूरीनाम में

40% और ट्रिनीडाड में 41% है। ब्रिटेन में हिंदी भाषियों की अधिकता के कारण 'हिंदी' अब सर्वाधिक बोलने वालों की संख्या में द्वितीय स्थान पर आ गई है। यही नहीं इन देशों में समाचार पत्र, मासिक पत्रिकाएँ एवं साहित्यिक कृतियाँ भी नियमित रूप से प्रकाशित होती हैं। इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक है कि प्रवासी भारतीयों का अपना संप्रेषण-तंत्र है जो हम लोगों से भिन्न है। ये भी हमारी तरह दुभाषिए हैं पर जन-व्यवहार के लिए क्रियोल का सहारा लेते हैं और कार्यालयों में भिन्न राजभाषा का। उदाहरण के लिए मॉरीशस में फ्रेंच आधारित क्रियोल (जो कि जनभाषा है) और फ्रेंच तथा अंग्रेज़ी (राजभषाएँ) का व्यवहार होता है। हाँ, यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि सामाजिक-सांस्कृतिक अनुष्ठानों की भाषा मानक हिंदी ही है, विशेषकर पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों की। मॉरीशस में सबसे पहले 1909 में 'हिंदुस्तानी' और 'मारीशस आर्य' नामक दो पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ था। इसी प्रकार अन्य देशों में भी कई पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी में निकलीं और अब भी प्रकाशित हो रही हैं। संप्रति मारीशस, फीजी, सूरीनाम, ट्रिनीडाड, गयाना, म्यांमार (बर्मा), नेपाल, जापान, चीन, अमरीका, इंग्लैंड, कनाडा, नार्वे जैसे देशों से हिंदी में पत्रिकाएँ निकाली जा रही हैं।

इसके अतिरिक्त आज जापान, अमरीका, इंग्लैंड एवं अन्य योरोपीय देशों में हिंदी भाषा 'विदेशी भाषा' के रूप में कई विश्वविद्यालयों के शिक्षण और शोध का विषय है। यही कारण है कि पिछले तीस वर्षों में जर्मन-हिंदी, फ्रेंच-हिंदी, चैक-हिंदी, रूसी-हिंदी, हिंदी-डच, अंग्रेज़ी-हिंदी कोशों की बाढ़-सी आ गयी है। इन्हीं विश्वविद्यालयों में कहीं-कहीं हिंदी की त्रैमासिक एवं वार्षिक पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। अंततः एक और बात जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है और वह है हिंदी का योगदान बंगलादेश, श्रीलंका, इन्डोनेशिया, मलेशिया, कम्बोडिया आदि देशों के लिए जहाँ हिंदी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रेरणा प्रदान करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत की अनेकानेक भाषाओं में हिंदी (और उसकी बोलियाँ) ही एक भाषा है जो अधिक मात्रा में देश की सीमा के बाहर प्रयुक्त होती है। यही नहीं वरन् हिंदी प्रवासियों के सांस्कृतिक और सामाजिक अस्मिता की पहचान भी है एवं उनकी संस्कृति की अभिव्यंजना भी।

6.7 सारांश

समाजभाषाविज्ञान समाज में भाषा की स्थिति, सामाजिक संगठन की एक व्यवस्था के रूप में भाषा के प्रकार्य तथा भाषा की संरचना के माध्यम से सामाजिक संगठन की अभिव्यक्ति आदि का अध्ययन करता है। व्यापक अर्थ में देश के लिए भाषा की नीति तय करना, देश की भाषाओं के विकास के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार करना आदि भी समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं।

भाषा वैविध्य (याने भाषा के विभिन्न रूपों की अवस्थिति) समाजभाषाविज्ञान का प्रमुख बिंदु है। हम आज यह जानते हैं कि 'भाषा' के उपलब्ध सभी प्रयोगों में से हर व्यक्ति अपनी निजी भाषा का निर्माण करता है जिसे व्यक्तिबोली कहा जाता है। व्यक्तिबोली के भी संदर्भ के अनुसार विविध रूप हैं। वह कार्य क्षेत्र के अनुसार विभिन्न प्रयुक्तियों का उपयोग करता है और संदर्भ के अनुसार विविध शैलियों का प्रयोग करता है। सामाजिक स्तर पर हम क्षेत्रीय बोलियों और सामाजिक शैलियों का अवलोकन कर सकते हैं। भाषा वास्तव में एक मूर्त, एकीकृत व्यवस्था नहीं है, इन्हीं सब व्यक्तिबोलियों, प्रयुक्तियों, बोलियों और शैलियों का सर्वसमावेशी रूप है।

आधुनिक युग बहुभाषिकता का युग है। हर समाज में हम कई भाषाओं का प्रयोग देख सकते हैं। समाज में इन भाषाओं के परस्पर संबंध की भी कई विशेषताएँ हैं। ये भाषाएँ एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। कहीं कोई भाषा हावी हो जाती है और कमज़ोर भाषा क्षरण

की स्थिति में पहुँचती है। तब उस भाषा को बोलने वाले उसके अनुरक्षण के उपाय करने लगते हैं। बहुभाषिकता की स्थिति में अक्सर तीसरी भाषा का निर्माण हो जाता है। पिजिन दो भाषाओं के योग से बना अस्थायी रूप है, कामचलाऊ संप्रेषण माध्यम है। अगर इस तरह का संकर रूप स्थायित्व और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त कर लें तो वह क्रियोल का दर्ज़ा प्राप्त कर लेती है।

व्यक्ति के स्तर पर दो या अधिक भाषाओं में काम करने की स्थिति को द्विभाषिकता (Bilingualism) की संज्ञा दी जाती है। व्यक्ति इनमें किसी एक भाषा पर अधिकर रख सकता है या दोनों पर समान अधिकार। यह बात व्यवहार दोनों भाषाओं के उसके प्रकार्यों से निश्चित होती है। द्विभाषिकता की स्थिति में यह नहीं होता कि वह दोनों भाषाओं को असंपृक्त रख सके। परस्पर प्रभाव के कारण वह दोनों भाषाओं का बारी-बारी से प्रयोग कर सकता है (कोड मिश्रण की स्थिति) या उसकी एक भाषा में दूसरी भाषा के तत्व आ मिलते हैं (कोड अंतरण की स्थिति)।

इस इकाई में यह भी चर्चा की गई है कि सामाजिक संगठन भाषिक रचना को कैसे प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भाषिक प्रयोग सामाजिक संगठन पर प्रकाश डालते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी भाँजा, भतीजा, जेठ, देवर, साला, साढ़ू आदि अनेक रिश्ते के शब्द हैं जबकि अंग्रेज़ी में इतने शब्द नहीं हैं। भारतीय पारिवारिक संगठन इसका कारण हो सकता है। इसी तरह संबोधन के शब्द सामाजिक स्तर भेद का संकेत करते हैं।

इकाई के अंत में हिंदी के भाषा वैविध्य की चर्चा की गई है। इस संदर्भ में विस्तृत चर्चा इकाई 7 में की जाएगी।

6.9 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) समाजभाषाविज्ञान भाषा के कितने पहलुओं का अध्ययन करता है?
(2) बहुभाषिकता और द्विभाषिकता की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
(3) भाषा वैविध्य की संकल्पना का हिंदी के संदर्भ में विवेचन कीजिए।

2. टिप्पणियाँ

(1) कोड अंतरण और कोड मिश्रण
(2) भाषा में क्षरण अनुरक्षण और संघर्ष की स्थिति
(3) नाते-रिश्ते के शब्द
(4) भाषा और बोली का संबंध
(5) व्यक्ति बोली

इकाई 7 हिंदी भाषा क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 हिंदी भाषा और उसका क्षेत्र
7.3 हिंदी की उपभाषाएँ और बोलियाँ
  7.3.1 वर्गीकरण
  7.3.2 हिंदी और बोलियों का पारस्परिक संबंध
7.4 हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी
  7.4.1 हिंदी-उर्दू
  7.4.2 हिंदी-हिंदुस्तानी
7.5 हिंदी के विविध संदर्भ
  7.5.1 राष्ट्रीय संदर्भ
  7.5.2 संपर्क भाषा
  7.5.3 हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्व
7.6 सारांश
7.7 अभ्यास प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप 'हिंदी भाषा' से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें, उसका क्षेत्र, बोलियाँ-उपभाषाएँ तथा विविध संदर्भ पढ़ सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'हिंदी भाषा' किसे कहते हैं और उसका क्या क्षेत्र है, यह जान सकेंगे;
- हिंदी भाषा की बोलियों/उपभाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- हिंदी का उर्दू तथा हिंदुस्तानी से क्या संबंध है, इसका विवरण दे सकेंगे;
- राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी की क्या-क्या भूमिकाएँ हैं, यह समझ सकेंगे;
- राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति स्पष्ट रूप से समझा सकेंगे;
- यह जान सकेंगे कि भारत में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की क्या स्थिति है, और
- वर्तमान में हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति क्या बन चुकी है, यह स्पष्ट कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इससे पहले आप इस खंड में भारतीय भाषा क्षेत्र से परिचय प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में हम **हिंदी भाषा** के बारे में चर्चा कर रहे हैं जो भारतवर्ष की अनेक भाषाओं में से एक अत्यधिक महत्वपूर्ण भाषा है। इसका क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत है जिसमें अनेक बोलियाँ/उपभाषाएँ हैं। कह सकते हैं कि अनेक बोलियों/उपभाषाओं का समूह **हिंदी भाषा** है। यह भारत में संपर्क भाषा के रूप में पिछली अनेक शताब्दियों से विकसित हुई है। 'राष्ट्रभाषा' के रूप में भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जुड़ी रही और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान में इसको राजभाषा का पद प्राप्त हुआ है। आज विश्व एक इकाई बन गया है। प्रवासी भारतीय द्वारा पहले से अनेक देशों में हिंदी पढ़ी/समझी जाती थी पर अब महत्व के कारण विश्व के शताधिक विश्वविद्यालयों/संस्थानों में हिंदी का पठन-पाठन किया जा रहा है। इस तरह इस इकाई में आपको हिंदी भाषा का क्षेत्र, उसकी बोलियों/उपभाषाओं के बारे में जानकारी मिलेगी साथ ही, उसके राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा तथा अंतर्राष्ट्रीय रूपों का परिचय मिलेगा।

7.2 हिंदी भाषा और उसका क्षेत्र

हिंदी का प्रचलन शताब्दियों से चला आ रहा है। संस्कृत शब्द 'सिंधु' से संबद्ध किया जाता है। 'सिंधु' नदी का कोई-न-कोई नाम उस पार के व्यक्ति प्रयोग में लाते होंगे। 'हिंदी' का मूल अर्थ 'हिंदी का' या 'भारतीय' हुआ। विशेषण के अतिरिक्त 'हिंदी' शब्द संज्ञा रूप में प्रयोग भी अनेक भिन्न अर्थों में मिलता है। 'हिंदी' में ईरानी का विशेषण 'ईक' जुड़कर 'हिंदीक' व्यवहार में आया जो ग्रीक में 'इंदिके' व 'लैटिन में 'इंदिओ' हुआ। पंचतत्र का अनुवाद जब फारसी में हुआ तो उसे 'जबाने हिंदी' से किया हुआ बताया गया। भाषा के अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग तैमूर के पोते के समय (1424 ई.) में लिखे ग्रंथ 'जफ़रनामा' में किया गया। भारत में तो मात्र 'भाषा' का ही प्रयोग किया गया।

हिंदी भाषा क्षेत्र

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिंदी' का अर्थ 'हिंद का' होते हुए भी इसका प्रयोग उत्तर भारत के मध्य में बोली जाने वाली भाषा के लिए होता है। हिंदी भारत के सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। व्यवहार में हिंदी उस बड़े भू-भाग की भाषा मानी जाती है जिसकी सीमा पश्चिम में जेसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है। इस विशाल भू-भाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा, आपस में वार्तालाप आदि की भाषा 'हिंदी' है, जिसमें स्थानीय बोलियों की छाया ज़रूर मिली रहती है। शिष्ट बोलचाल के अतिरिक्त स्कूलों-विद्यालयों में शिक्षा की भाषा एकमात्र खड़ी बोली है। यही भाषा 'हिंदी' है यद्यपि कुछ स्थानों पर प्रारंभिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा का माध्यम स्थानीय बोलियाँ/उपभाषाएँ भी हैं। इस कारण इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। आज जिसे हम 'हिंदी भाषा का क्षेत्र' कहते हैं, उसमें अनेक प्रमुख राज्य आते हैं :

प्रमुख राज्य हैं : उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल बिहार, झारखंड मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश और दिल्ली।
संघशासित राज्य : चंडीगढ़ और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह।

जिसे हम 'हिंदी क्षेत्र' कहते हैं, उसमें सामान्य जनता इस क्षेत्र में बोली जाने वाली बोलियों का व्यवहार करती है। राजस्थान में बोली जाने वाली उपभाषाओं के समूह को 'राजस्थानी' कहते हैं जिसमें मारवाड़ी, मेवाड़ी, जयपुरी, मालवी, हाड़ौती आदि बोलियाँ हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार में बोली जाने वाली उपभाषाओं का समूह 'बिहारी' है जिसमें भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि समाहित होती हैं। इसी प्रकार उत्तर में पहाड़ी प्रदेशों की बोलियों/उपभाषाओं के समूह को 'पहाड़ी' कहते हैं जिसमें पश्चिम में हिमाचल प्रदेश की बोलियाँ, मध्य में उत्तर प्रदेश की गढ़वाली-कुमाऊँनी तथा पूर्व में नेपाली है। 'नेपाली' पृथक स्वतंत्र राष्ट्र नेपाल की भाषा तो है ही, भारतवर्ष में भी उत्तरी बंगाल, सिक्किम, नेपाल की तराई प्रदेश आदि में बोली जाने के कारण अब संविधान में अष्टम अनुसूची में मान्यता प्राप्त कर चुकी है।

उक्त तीनों समूहों के मध्य जो क्षेत्र है, वह भौगोलिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित है :
पश्चिमी हिंदी : खड़ी बोली, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली, बांगरू इन पाँच प्रमुख बोलियों का समूह।

पूर्वी हिंदी : अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, इन तीन बोलियों का समूह।

'हिंदी भाषा' का क्षेत्र केवल हिंदी भाषी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है। भारत के लगभग सभी भागों में यह समझी-बोली जाती है। देश के कुछ भागों में स्थानीय संपर्क के लिए हिंदी भाषा का प्रयोग होता है, जैसे हैदराबाद, बंबई आदि महानगरों में।

7.3 हिंदी की उपभाषाएँ और बोलियाँ

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि अनेक उपभाषाओं तथा बोलियों का समूह 'हिंदी भाषी क्षेत्र' है। सर्वप्रथम केलाग ने हिंदी भाषा की व्याकरण की रचना करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा :

"साहित्यिक हिंदी के अतिरिक्त इस पुस्तक में अपेक्षाकृत कम महत्व की नौ-दस बोलियों के रूप भी दिए गए हैं। मैं यह मानता हूँ कि बोलियों के स्थानीय उपभेदों का समावेश इस पुस्तक में नहीं हो सका, किंतु मुझे विश्वास है कि पूर्व में बंगाली से लेकर पश्चिम में गुजराती तथा सिंधी तक फैली हुई **हिंदी भाषा** की सभी जीवित शैलियों के बारे में बहुत-कुछ जानकारी इस पुस्तक में आ गई है।"

उन्होंने इस व्याकरण में 'स्तरीय हिंदी' के साथ जिन बोलियों/उपभाषाओं के समानांतर रूप प्रस्तुत किए उनके नाम इस प्रकार हैं :

"कन्नौजी, ब्रज, मारवाड़ी, मेवाड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, नेपाली, पुरानी बैसवाड़ी, अवधी, रिवाई, भोजपुरी, मगधी, मैथिली।"

भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण के आधार पर डॉ. ग्रियर्सन ने और अधिक व्यवस्थित ढंग से इनको प्रस्तुत करते हुए पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी दो खंडों विभाजित किया। 'पूर्वी हिंदी' को महत्व देते हुए पृथक से इसका एक खंड (छह) में विस्तार से दिया। 'पश्चिमी हिंदी' को **केंद्रीय वर्ग** के भाग-प्रथम में रखते हुए इसके अंतर्गत हिंदोस्थानी, बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली बोलियों/भाषाओं में विभाजित किया। 'हिंदोस्थानी' ही एक प्रकार से खड़ी बोली है। भाग-2 में राजस्थानी तथा भाग-4 में पहाड़ी-पूर्वी, मध्य पश्चिमी को रखा है। डॉ. सुनीत कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन से भिन्न मत स्थापित किया। उन्होंने मध्यदेशीय में 'पश्चिमी हिंदी' को स्थापित कर केंद्रबिंदु बनाया।

इस पृष्ठभूमि में डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने सन् 1950 में 'हिंदी की ग्रामीण बोलियाँ' में हिंदी भाषा के दो वर्ग – पश्चिमी तथा पूर्वी उपभाषाएँ समाहित किए हैं। पुस्तक के प्रारंभ में 'परिचय' के अंतर्गत हिंदी भाषा तथा उसकी बोलियों का संक्षिप्त वर्णन दिया है :

"खड़ी बोली हिंदी के साहित्यिक रूपांतर – हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी। इसको ही ग्रियर्सन ने 'वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी' नाम दिया है ... जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिंदी सगी बहनें हैं। विकसित होने पर इन दोनों में जो अंतर हुआ उसे रूपक में यों कह सकते हैं कि ... साहित्यिक वातावरण, शब्दसमूह तथा लिपि में हिंदी और उर्दू में आकाश-पाताल का भेद है। ... मेरठ बिजनौर की खड़ी बोली उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिंदी दोनों ही की मूलाधार है।"

7.3.1 वर्गीकरण

हिंदी की बोलियाँ/उपभाषाओं का मोटा-मोटा वर्गीकरण निम्नलिखित है। लगभग यही वर्गीकरण कुछ हेर-फेर के साथ अन्य भाषाशास्त्रियों को भी मान्य है।

डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने उपवर्ग तथा उपभाषाओं में इस प्रकार विभाजित किया है :

1. **पश्चिमी उपभाषा :**
   1. खड़ी बोली
   2. बांगरू
   3. ब्रज
   4. कन्नौजी
   5. बुंदेली

2. **पूर्वी उपभाषा :**
   1. अवधी
   2. बघेली
   3. छत्तीसगढ़ी

3. **बिहारी उपभाषा :** 1. भोजपुरी
   2. मैथिली
   3. मगही

4. **राजस्थानी उपभाषा :**
   1. मेवाती-अहीरवादी
   2. मालवी
   3. जयपुरी-हाड़ौती
   4. मारवाड़ी-मेवाड़ी

5. **पहाड़ी उपभाषा** : पहाड़ी उपभाषा हिमाचल प्रदेश में शिमला से नेपाल तक फैली हुई है। इसके अंतर्गत तीन प्रधान बोलियाँ हैं :
   पश्चिमी, मध्य तथा पूर्वी

   (क) पश्चिमी पहाड़ी : ये बोलियाँ सरहिंद के उत्तर में शिमला से नेपाल तक फैली हुई हैं। आज यही क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के नाम से जाना जाता है। यहाँ बोली जाने वाली अनेक उपभाषाओं में से मंडियाली, कुल्लूई, चम्बाई पर शोधकार्य हो चुके हैं।

   (ख) मध्य पहाड़ी : दो मुख्य उपरूप हैं :
   1. **कुमाऊँनी** : अल्मोड़ा, नैनीताल, पिथौरागढ़ आदि जनपदों में बोली जाती हैं।
   2. **गढ़वाली** : गढ़वाल प्रदेश – टिहरी, उत्तरकाशी, देहरादून, चमोली आदि जनपदों में बोली जाती हैं।

   (ग) पूर्वी पहाड़ी : यही प्रकारांतर से 'नेपाली' है।

खड़ी बोली का केंद्रबिंदु मेरठ, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, बिजनौर हैं; 'बांगरू' ही अब 'हरियाणवी' है जो हरियाणा राज्य में बोली जाती है; 'कन्नौजी' कन्नौज और कानपुर के चतुर्दिक; 'बुंदेली' बुंदेलखंड; ओरछा, सागर तक; 'अवधी' प्रतापगढ़-पूर्व तथा पश्चिम; 'बैंसवाड़ी' बैसवाड़ा-कानुपर, लखनऊ के मध्य; 'भोजपुरी' पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के कई जिलों में; 'मगही' का केंद्रबिंदु गया है; 'मैथिली' दरभंगा के समीपवर्ती क्षेत्र में; 'मारवाड़ी' मारवाड़-बीकानेर, गंगानगर, जोधपुर; 'जयपुरी' जयपुर के समीप शेखावटी प्रदेश में; 'मालवी' झाबुआ तथा इंदौर के समीपवर्ती प्रदेश में, 'हाड़ौती' कोटा के समीप, 'मेवाड़ी' मेवाड़-चित्तौड़-उदयपुर के समीप, 'मेवाती' मेव क्षेत्र में हरियाणा और राजस्थान की सीमा पर बोली जाती है। मध्यप्रदेश के निमाड़ क्षेत्र में बोली जाने वाली 'निमाड़ी' भी महत्वपूर्ण है।

साहित्यिक खड़ी बोली के विविध रूप-उपरूप - उर्दू (क्लिष्ट और साधारण, दिल्ली और लखनऊ), साहित्यिक हिंदी (क्लिष्ट और साधारण), आगरा-देहली की खड़ी बोली, हिंदुस्तानी के निकट, साहित्यिक हिंदुस्तानी आदि स्वीकार किए जाते हैं जिनको अब हिंदी के विविध शैलीगत रूप माना जाने लगा है। हिंदी का उपरूप 'दकिनी' (दक्षिण भारत में) विकसित हुआ जिसका प्रचलन हैदराबाद, मैसूर व केरल में है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने रूस के दक्षिण में बोली जाने वाली बोली – 'ताजुज्बेकी' को भी हिंदी की नवज्ञात बोली स्वीकार किया है। इसी आधार पर अन्य विद्वानों ने विश्व में अनेक

स्थानों पर प्रवासी भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली उपभाषाओं को अब हिंदी की बोली माना है। डॉ. सतीश ने सुरीनाम में बोली जाने वाली भाषा को 'सरनामी हिंदी' की संज्ञा दी है और अब डॉ. विमलेश कांति वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिंदी और उसकी उपभाषाएँ' (सन् 1996 ई.) में फीजी बात (फीजी की बोली) तथा पारया (उज़बेकिस्तान की बोली) को भी हिंदी की बोलियों में समाहित किया है। अब हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्व बढ़ता जा रहा है। इसी दृष्टि से विश्व में बोली जाने वाली प्रवासियों की इन बोली रूपों को हिंदी की बोली माना जाने लगा है। 'मॉरीशस' में भी हिंदी का उपरूप विकसित हो रहा है। डॉ. हरदेव बाहरी के मतानुसार, 'बोलियाँ जनता के दिलों तक पहुँचने की सीधी राहें हैं।' इस कारण ही अंग्रेजों के राज्य में पराधीनता में भी बोलियों के अध्ययन को महत्व दिया जाने लगा।

इस प्रकार हमने देखा कि हिंदी की बोलियों/उपभाषाओं को हिंदी के संकुचित क्षेत्र, विस्तृत क्षेत्र के व्यवहार के रूप में तथा अखिल भारतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय रूप के संदर्भ में विभाजित किया जा सकता है :

भारतीय–राष्ट्रीय

पश्चिमी खंड ⟷ पूर्वी खंड

पश्चिमी हिंदी — राजस्थानी मारवाड़ी — पहाड़ी — पूर्वी हिंदी — बिहारी

1. **पश्चिमी उपभाषा :**
   1. खड़ी बोली
   2. बांगरू
   3. ब्रज
   4. कन्नौजी
   5. बुंदेली

2. **पूर्वी उपभाषा :**
   1. अवधी
   2. बघेली
   3. छत्तीसगढ़ी

3. **बिहारी उपभाषा :** 1. भोजपुरी
   2. मैथिली
   3. मगही

4. **राजस्थानी उपभाषा :**
   1. मेवाती-अहीरवादी
   2. मालवी
   3. जयपुरी-हाड़ौती
   4. मारवाड़ी-मेवाड़ी

5. **पहाड़ी उपभाषा :** पहाड़ी उपभाषा हिमाचल प्रदेश में शिमला से नेपाल तक फैली हुई है। इसके अंतर्गत तीन प्रधान बोलियाँ हैं :
   पश्चिमी, मध्य तथा पूर्वी

7.3.2 हिंदी और बोलियों का पारस्परिक संबंध

हिंदी की जनपदीय बोलियों का पर्याप्त महत्व है क्योंकि मानक हिंदी की जीवनी शक्ति इन बोलियों से ही प्राप्त होती है। जनपदीय भाषाओं के महत्व का आकलन प्राच्यविद डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल तथा भाषाविद डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने किया है :

डॉ. श्रीवास्तव के अनुसार 'अगर साहित्य सामाजिक चित्तवृत्तियों की मूल रागात्मक अभिव्यक्ति है तो इसमें संदेह नहीं कि उसके लिए मातृभाषा ही

सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम भाषा का काम कर सकती है। यही वह माटी है जिससे धरती की महक आती है और जिससे अपनी वाग्देवी की मूर्ति सहज और साकार ढंग से गढ़ी जा सकती है। ... इन जनपदों में रहने वाले व्यक्तियों की चेतना की आँख जिस भाषा में पहली बार खुलती है, वे भले ही जनपदीय बोलियाँ होती हैं पर जहाँ तक सामाजिक अस्मिता, साहित्यिक परंपरा के दबाव और सांस्कृतिक मानसिकता का प्रश्न है, वे उनको अपनी महाजाति हिंदी में ही पाते हैं।"

(समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-सितम्बर, 1991)

सुप्रसिद्ध समाजभाषावैज्ञानिक गम्पर्ज़ ने हिंदी क्षेत्र का व्यापक दौरा किया और पाया कि हिंदी की बोलियों का परस्पर संबंध बहुत प्रगाढ़ है। उन्होंने स्पष्ट किया :

"हिंदी क्षेत्र में भाषा-भेद के तीन स्तर हैं जो सामाजिक प्रयोजनों में नियमित हैं। निम्न स्तर पर स्थानीय या ग्रामीण बोली का प्रयोग होता है। ये सभी बोलियाँ एक शृंखला के ऊपर उपभाषाएँ हैं। भाषा-भेद की दृष्टि से दूसरा स्तर है। यदि कुछ ग्रामीण बोलियों का कोई एक विचार-विनिमय का केंद्र है तो वहाँ इस उपभाषा का प्रयोग किया जाता है। इसी उपभाषा के रूप में अपने-अपने उपभाषाई क्षेत्रों में छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, ब्रज या अवधी का मानक रूप निर्धारित होता है। परंतु वे मानक रूप अपने उपभाषाई क्षेत्रों से बाहर नहीं आते। इन क्षेत्रों से बाहर आने की सारी केंद्रीय शक्ति उच्च स्तर की भाषा यानी मानक हिंदी में है।"

यह भाषा-भेद जिस प्रकार सीमावर्ती गाँवों की बोलियों/दो बोलियों की सीमारेखा (ब्रज-खड़ी बोली) पर दिखाई देता है उसी प्रकार से समाज में विभिन्न स्तरों पर भी दिखाई देता है। घर में जिस बोली से संप्रेषण होता है, समाज के प्रत्येक स्तर पर भिन्न होता है। ब्रजवासी जब बुंदेली क्षेत्र में जाता है तो बोधगम्यता की कोई समस्या नहीं होती पर जब वह भोजपुरी भाषा भाषी से संपर्क स्थापित करता है तो मानक भाषा का सहारा लेना होता है चाहे उसकी भाषा में स्थानीय भाषा का पुट विद्यमान रहे। इस प्रकार बोधगम्यता के विभिन्न स्तर होते हैं।

किसी एक भाषा की विभिन्न बोलियों में पारस्परिक बोधगम्यता रहती है। इसी बात को इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि कुछ बोलियों में पारस्परिक बोधगम्यता विद्यमान है तो वे बोलियाँ निश्चित रूप से किसी एक भाषा से संबंधित होंगी। परस्पर बोधगम्यता के लिए कुछ तत्व आवश्यक हैं :

क. व्याकरणिक गठन में कुछ-न-कुछ समानता।
ख जातीय समानता।
ग. विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक समानता।

उपर्युक्त तत्वों में जितनी अधिक समानता होगी परस्पर बोधगम्यता उतनी ही अधिक होगी। हिंदी की सभी उपभाषाएँ/बोलियाँ एक दूसरे से उतनी गुंथी हुई हैं कि कभी-कभी यह पहचानना कि दो उच्चरित रूप अलग बोलियाँ हैं या नहीं संभव नहीं होता। 'रातचरितमानस' इसका ज्वलंत उदाहरण है जो मूलतः 'अवधि' में लिखा गया है जिसमें ब्रजभाषा का पुट भी पर्याप्त है। यही कारण है कि 'रामचरितमानस' सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसी को उन्नीसवीं शताब्दी के वैयाकरण केलाग ने स्पष्ट शब्दों में कहा :

"अब तक हिंदी के सभी वैयाकरणों ने उस पूरबी हिंदी की समानरूप से उपेक्षा की है, जिसका प्रतिनिधित्व तुलसीदास की रामायण करती है। यह अलग बात है कि उसमें पछाँह की बोली का भी मिश्रण हुआ है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि विश्वव्यापी लोकप्रियता और जनता पर पड़े प्रभाव की दृष्टि से तुलसीदास के साथ कबीर....।"

[व्याकरण (हिंदी अनुवाद) पृष्ठ 24]

आदिकाल के 'पृथ्वीराज रासो' के भाषा के अध्येता कभी अपभ्रंश की ओर कभी राजस्थानी (डिंगल), तो कभी ब्रजभाषा (पिंगल) की ओर जाते हैं। अंततः अनेक भाषाओं के मिश्रण (षटभाषा) के पक्ष में चल देते हैं। यही समस्या कबीर के अध्येताओं के सामने रही। अंततः कबीर की भाषा को 'पचमेली' या 'सधुक्कड़ी' कह दिया गया। यही हिंदी की उपभाषाओं/बोलियों के मध्य पारस्परिक बोधगम्यता को सिद्ध करना है।

हिंदी और उसकी बोलियों के पारस्परिक संबंध को दो दशक पूर्व मैंने इस प्रकार रेखांकित किया :

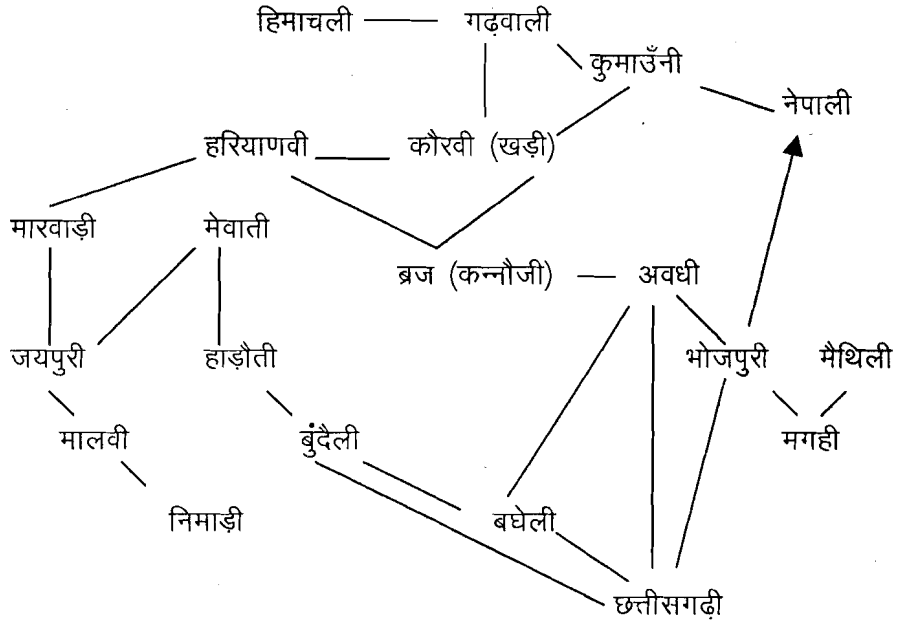

7.4 हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी

जैसा स्पष्ट किया जा चुका है हिंदी भाषा के कई शैलीगत रूप प्रचलन में आ गए और उनका विकास होता गया। डॉ. ग्रियर्सन और डॉ. धीरेंद्र वर्मा द्वारा दिए गए उपरूपों की चर्चा की जा चुकी है। डॉ. वर्मा ने खड़ी बोली हिंदी के साहित्यिक रूपांतर में 'हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी' का परिगणन किया है। उन्होंने माना है कि जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिंदी सगी बहनें हैं। इसको ही ग्रियर्सन ने 'वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी' की संज्ञा दी है। उन्होंने 'हिंदुस्तानी' के अंतर्गत उर्दू, दक्खिनी तथा वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी सम्मिलित की है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसमें साहित्यिक हिंदोस्तानी, ठेठ हिंदोस्तानी, लखनऊ की तीन प्रकार की उर्दू, दिल्ली की दो प्रकार की उर्दू, बनारस की साहित्यिक हिंदी, संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश), पंजाब, मध्यप्रांत आदि की हिंदोस्तानी, पूर्वी भारत की हिंदोस्तानी, गुजरात की हिंदोस्तानी व कच्छ की हिंदोस्तानी, दक्खिनी-बंबई, मद्रास, बरार तथा वर्नाक्यूलर हिंदोस्तानी – मेरठ, मुज़फ्फरपुर, पश्चिमी रुहेलखंड, बिजनौर, अंबाला की बोलियाँ सम्मिलित हैं। आज से एक शताब्दी पूर्व जब डॉ. ग्रियर्सन को इतने अधिक विविध रूप दिखाई दिए तो अब संचार माध्यमों की क्रांति – आकाशवाणी, फिल्म तथा दूरदर्शन तथा अनेक चैनलों के विस्फोट के बाद इनमें कितनी अधिक बढ़ोत्तरी हुई होगी, मात्र कल्पना की जा सकती है।

7.4.1 हिंदी-उर्दू

आधुनिक हिंदी में तो यही स्वीकार किया जाता है कि खड़ी बोली का ही एक साहित्यिक रूप हिंदी है तो दूसरा उर्दू। हिंदी से जुड़े भाषाविद् उर्दू को हिंदी की एक शैली मानते हैं। यह मानना भी सर्वथा असत्य है कि हिंदी हिंदुओं की भाषा है और उर्दू मुसलमानों की। उर्दू

को जितना हिंदुओं ने अपनाया और समृद्ध किया उतना अन्य धर्मावलम्बियों ने नहीं। इसी प्रकार हिंदी को समृद्ध कने में खुसरो से लेकर आज तक हुए साहित्यकारों की लंबी सूची है। दूरदर्शन में दिखाए गए 'महाभारत' के संवादों के लेखक राही मासूम रज़ा आज अमर हैं।

उर्दू में जो भी थोड़ी भिन्नता है उसमें कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ, अरबी-फारसी से प्राप्त शब्दावली और कुछ व्याकरणिक रूप हैं पर सामान्यतः व्याकरणिक ढाँचा एक है। किसी भी भाषा को चार आयामों में देखा जाता है – व्याकरण, उच्चारण, शब्दकोश और लिपि। लिपि की भिन्नता से दो भाषाएँ नहीं बन जातीं। समान लिपि से दो भाषाएँ एक नहीं हो जातीं अन्यथा मराठी-हिंदी एक हो जातीं। शब्दकोश की दृष्टि से अंग्रेज़ी में जितनी शब्दावली दूसरी भाषाओं की रचपच गई है, उतनी किसी अन्य भाषा में नहीं। ध्वनि-उच्चारण में मात्र पाँच विशिष्ट ध्वनियाँ – क़, ख़, ग़, ज़ तथा फ़ उर्दू में हैं जिनमें से ज़ और फ़ (अंग्रेजी के कारण भी) अब हिंदी में गृहीत कर ली गई हैं। किसी भी भाषा की बोलियों में जितना अंतर होता है उससे कहीं कम हिंदी-उर्दू में है।

हिंदी-उर्दू एक ही भाषा है और हिंदी में लिखने वाले तुर्क और मुसलमान दोनों ही हैं। बोलचाल की खड़ीबोली का रूप मुसलमानों के आगमन से बहुत पहले विद्यमान था। यही हिंदी का पुराना रूप (पुरानी हिंदी) हिंदी-उर्दू का मूलाधार बनी। प्रो. मौलवी वहीदुद्दीन साहब 'सलीम' ने कहा है :

> 'हिंदी को हम अपनी ज़बान के लिए उमुल्लिसान (भाषा की जननी) और हमूलाए-अव्वल (मूल तत्व) कह सकते हैं। इसके बगैर हमारी ज़बान की कोई हस्ती नहीं है।'
>
> 'हिंदी साहित्य के इतिहास में मुस्लिम साहित्यकारों का महत्व हिंदुओं से कम नहीं है। ... यही आंदोलन जब खड़ी बोली के आधार पर विकसित हुआ, तो उसमें भी हिंदू और मुसलमान दोनों मिलकर प्रयत्नशील हुए। इस भाषा के पास पूर्व साहित्यों की निधि तथा फ़ारसी, तुर्की, अरबी शब्दों एवं साहित्यों की परंपरा थी। यह भाषी कभी 'हिंदवी', कभी 'हिंदुई', कभी 'हिंदी', कभी रेख़्ता', कभी 'हिंदुस्तानी' आदि कहलाती रही। बहुत समय बाद इसी भाषा का नाम उर्दू प्रचलित हुआ। इसके साहित्यकारों में हिंदू-मुसलमान दोनों बड़ी संख्या में मिलते हैं।'
> (महमूद शीरानी : पंजाब में उर्दू सम्मेलन, अमृत महोत्सव स्मारिका, पृष्ठ 430)

वस्तुतः हिंदी-उर्दू एक ही भाषा है जिसे पहले उर्दू कहा गया यह वास्तव में हिंदी ही है और हिंदी में लिखने वाले तुर्क और मुसलमान दोनों ही हैं। उक्त विवरण यथार्थ होते हुए भी यह स्मरण रखना चाहिए कि अब भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में जो अठारह भाषाएँ स्वीकृत हैं उनमें हिंदी के साथ उर्दू भी है। साथ ही यह भाषा (उर्दू) जम्मू-कश्मीर राज्य की प्रथम राजभाषा है और आंध्र प्रदेश में द्वितीय राजभाषा के रूप में स्वीकृत है। कई हिंदी भाषा-भाषी राज्य भी उर्दू को द्वितीय राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान कर चुके हैं। ऐसी स्थिति में संवैधानिक मान्यता मिलने के कारण अन्य भारतीय भाषाओं के साथ इसका और उर्दू का सह-अस्तित्व है जिसको नकारा नहीं जा सकता। भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान की राजभाषा होने के कारण इसकी अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर स्वीकृति है। कई राज्यों में उर्दू अकादमी इसके समुचित विकास की ओर ध्यान दे रही है। उर्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद इस भाषा का विकास भी होगा और उसमें क्षमता भी बढ़ेगी। ब्रिटिश शासन ने अपनी नीति से चाहे उर्दू-हिंदी में विभाजन बनावटी किया हो पर अब यह यथार्थ है कि उर्दू का विकास भी हिंदी के साथ-साथ भविष्य में होगा। दोनों भाषाओं में निष्णात साहित्यकार प्रेमचंद का कथन भी इस दिशा का संकेत करता है :

> 'हिंदी-उर्दू का भंडार दोनों जातियों के परिश्रम का फल है। अपनी-अपनी जगह भाषा की उन दोनों शाखाओं का विशेष महत्व है। दोनों ही ने अपने-अपने तौर पर

यथेष्ट उन्नति की है। दोनों ही के साहित्य भंडार में बहुमूल्य रत्न संचित हो गए हैं और हो रहे हैं।"

(प्रेमचंद के विचार, 1936)

7.4.2 हिंदी-हिंदुस्तानी

हिंदी भाषा का यह नामकरण यूरोप के निवासियों की देन है। सत्रहवीं शताब्दी में जब पुर्तगाली भारत में आए तो उन्होंने हमारे यहाँ की भाषा का नाम अपनी सूझ-बूझ के अनुसार 'इंदोस्तान' रखा। 'हिंदुस्तानी' नाम नया नहीं है, भारत की भाषा के रूप में इसका प्रयोग प्राचीन है :

"मैंने उसे अपने सामने बैठाकर एक व्यक्ति को जिसे हिंदुस्तानी (भाषा) का भलीभांति ज्ञान था, अपनी एक-एक बोल को उसे समझाने का आदेश दिया।

(मुगलकालीन भारत – बाबर, पृ. 145)

हाब्सन-जाब्सन जैसे सुप्रिसद्ध कोश में इसको उर्दू का पर्याय माना गया जिसको एंग्लो इंडियन मूर भी कहते थे। इस पुस्तक में जो उदाहरण दिए गए हैं उनमें से सबसे पहला सन् 1616 ई. का है। सन् 1673 के उदाहरण में इसको अधिक स्पष्ट किया गया है :

कोर्ट की भाषा फ़ारसी थी, जनसाधारण में बोलचाल की भाषा 'इंदोस्तान' थी।

(The language of the court is Persion, that commonly spoken is Indostan)

भाषा का बोलचाल का रूप **हिंदुस्तानी** नाम से जाना गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने '**बुद्धचरित**' महाकाव्य की भूमिका में 'सधुक्कड़ी भाषा' पर टिप्पणी देते हुए अपने विचार व्यक्त किए :

"**खड़ी बोली** मुसलमानों की भाषा बन चुकी थी। मुसलमान भी साधुओं की प्रतिष्ठा करते थे चाहे वे किसी दीन के हों। इससे खड़ी बोली दोनों धर्मों के अनपढ़ लोगों को साथ लगाने वाले और किसी एक के भी शास्त्रीय पक्ष से संबंध न रखने वाले साधुओं के बड़े काम की हुई जैसे इधर अंग्रेज़ों के काम की 'हिंदुस्तानी' हुई।"

दक्षिण भारत में जब गांधीजी ने हिंदी के प्रचार-प्रसार का काम प्रारंभ किया तो हिंदी के '**हिंदुस्तानी**' रूप को ही मान्यता दी। महात्मा गांधी ने '**राष्ट्रभाषा**' के पाँच लक्षण बताए और उनकी व्याख्या भी कही :

- वह भाषा कर्मचारियों के लिए सरल हो।
- उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष के परस्पर धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवहार निभ सकें।
- उस भाषा को देश के अधिकांश निवासी बोलते हों।
- वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो।
- वह भाषा अल्पस्थायी स्थिति के ऊपर निर्भर न हो।

कांग्रेस की सभा में की जाने वाली कार्यवाही संबंधी भाषा का प्रस्ताव कानपुर अधिवेशन में सन् 1925 में पारित हुआ :

कांग्रेस की यह सभा प्रस्ताव पास करती है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और वर्किंग कमेटी की कार्रवाई आंमतौर पर **हिंदुस्तानी** में चलेगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी 'हरिजन' में उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया :

मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि हिंदुस्तानी सारे हिंदुस्तानियों के अंतर-प्रांतीय व्यवहार के लिए सबसे अच्छी भाषा होगी।' (दिनांक 26.10.1947)

सरल भाषा के रूप में हिंदी ही 'हिंदुस्तानी' के रूप में प्रचलित हुई जिसका प्रचलन समस्त भारतवर्ष में होता गया :

> "हिंदुस्तानी भारतवर्ष की आम भाषा है। हर हिंदी लिखने वाले का उद्देश्य यह होना चाहिए कि मानो वह मुसलमानों के पढ़ने के लिए लिख रहा है, और इसी तरह उर्दू लिखने वाले को यह ख्याल रखना चाहिए मानो वह हिंदुओं के पढ़ने के लिए लिख रहा है। अदीब-साहित्यकार ही कौम का पथ-प्रदर्शक होता है। भाषा के एकीकरण का इसके सिवा कोई दूसरा साधन नहीं। बोलचाल की भाषा गलियों और बाज़ारों में बनती है।"
>
> (प्रेमचंद के विचार, भाग-2)

एक प्रकार से हिंदुस्तानी शब्द का व्यवहार अंग्रेज़ों के राजकाल में शुरू हुआ। यह मिली-जुली भाषा का पर्याय बन गई और जनसाधारण में फैलती गई। एक प्रकार से 'क्लिष्ट हिंदी' और 'क्लिष्ट उर्दू' के मध्य जो सर्वसामान्य में प्रचलित उर्दू हुई वही हिंदुस्तानी है जिसमें अंग्रेज़ी शब्दों का प्रचलन बढ़ता गया :

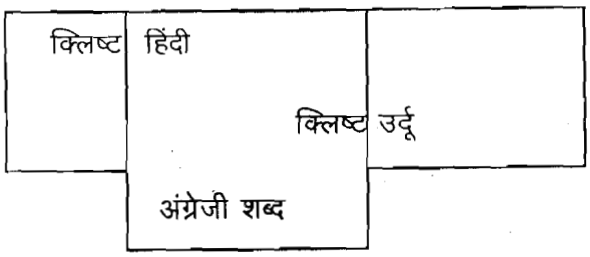

हिंदी-उर्दू का भंडार दोनों जातियों के परिश्रम का फल है। अपनी-अपनी जगह भाषा की उन दोनों शाखाओं का विशेष महत्व है। दोनों ही ने अपने-अपने तौर पर यथेष्ट उन्नति की है। दोनों ही के साहित्य भंडार में बहुमूल्य रत्न संचित हो गए हैं और हो रहे हैं।

(प्रेमचंद के विचार, 1936)

हिंदुस्तानी का प्रचलन इस रूप में हुआ।

इस विचार को ही भाषाविद् डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने इस प्रकार आरेख में प्रस्तुत किया :

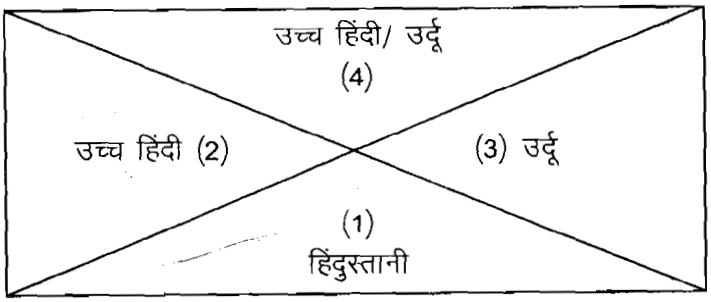

7.5 हिंदी के विविध संदर्भ

भारतवर्ष के मध्यप्रदेश की प्रमुख भाषा हिंदी है जिसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। विस्तृत भू-भाग में फैले होने के कारण इसके अंतर्गत अनेक बोलियाँ/भाषाएँ आती हैं। हिंदी के ऐतिहासिक विकास में अनेक क्षेत्रों के संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निबाही है। हिंदीतर क्षेत्र के विद्वानों/राजनीतिज्ञों के सहयोग से यह संपूर्ण भारत में राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित हो गई। हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाने में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का अपूर्व योगदान रहा। दक्षिण में हिंदी को फैलाने में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (मद्रास) चेन्नई की सराहनीय

भूमिका रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस भाषा को संविधान में राजभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया। संपूर्ण भारत में संपर्क स्थापित करने में हिंदी ही काम में आती है। आज अंतर्राष्ट्रीय जगत में इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। इन विविध संदर्भों को दो भागों– राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय में बाँटा जा सकता है।

7.5.1 राष्ट्रीय संदर्भ

इसके अंतर्गत हिंदी भाषा के निम्नलिखित तीन रूप लिए जा सकते हैं :

- राष्ट्रभाषा
- राजभाषा
- संपर्क भाषा

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा का शाब्दिक अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है – राष्ट्र की भाषा अर्थात् वह भाषा जिसका संपूर्ण राष्ट्र में प्रयोग होता है। जब किसी देश की कोई बोली/भाषा आदर्श बनकर **मानक रूप** ग्रहण की लेती है तो अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। फलतः पूरे राष्ट्र में तथा अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों में सार्वजनिक कामों में उस भाषा का प्रयोग होने लगता है और वही भाषा **राष्ट्रभाषा** के पद पर प्रतिष्ठित हो जाती है।

राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव तब विशेष रूप से किया जाने लगता है, तब राष्ट्रीयता के विकास के साथ राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीय एकता के प्रतीकों में सम्मिलित कर लिया जाता है। भावनात्मक एकता के लिए जब **भाषा** का महत्व प्रतिपादित किया गया है तो राष्ट्रभाषा का स्वरूप स्पष्ट हुआ। यही बात हिंदी के संदर्भ में तब सार्थक सिद्ध हुई, जब हिंदी अपनी सार्वभौमिकता, व्यापकता, सरलता और सर्वप्रियता के कारण **राष्ट्रभाषा** के रूप में उनके द्वारा स्वीकृत की गई जो हिंदी भाषा-भाषी नहीं थे। डॉ. हरदेव बाहरी ने राष्ट्रभाषा की संकल्पना स्पष्ट करते हुए इसकी तीन संभावनाएँ हैं :

1. कोई एक बोली।
2. अनेक बोलियों का मिश्रण।
3. देश में अनेक बोलियों में से किसी एक में अन्य बोली का मिश्रण।

'राष्ट्रभाषा' के चुनाव में राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता, क्षेत्रीय धारा लोकवादी जनतांत्रिक धारा सहायक सिद्ध होती है! संप्रभुता की पहचान राष्ट्रीय प्रतीकों के माध्यम से होती है – राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्रचिह्न तथा राष्ट्रभाषा स्वाभिमान के प्रतीक हैं। देश की भाषा ही स्वाभिमान, आत्मविश्वास प्रकट करती है जिसके माध्यम से देश की एकता व अखंडता का प्रतीकात्मक उद्घोष होता है। राष्ट्रभाषा के बिना देश की अस्मिता कुंठित हो जाती है, राष्ट्र गूँगा हो जाता है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि राष्ट्रभाषा का सीधा संबंध राष्ट्र की अस्मिता से है।

भारत में मध्यकाल से ही सारे देश के संतों के कारण स्वतः ही हिंदी का प्रचार-प्रसार उनके परिभ्रमण के साथ होता गया। पंजाब के गुरु नानक, उत्तर प्रदेश के कबीर, असम के शंकर देव, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, गुजरात के अखो आदि ने हिंदी के माध्यम से अपनी बात आम जनता तक पहुँचाई। संत ज्ञानेश्वर की यह पंक्ति हिंदी का उद्घोष करती है :

"दुनिया तजकर खक लगाई, जाकर बैठा बन माँ।"

इस दिशा में सर्वाधिक योगदान महात्मा गांधी का रहा जिन्होंने गुजरात के भड़ौंच नामक स्थान पर आयोजित गुजरात शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण (बीस अक्टूबर 1917 ई.) में स्पष्ट रूप से कहा कि केवल हिंदी ही 'राष्ट्रभाषा' हो सकती है,

हिंदी और उर्दू एक ही है, केवल उनकी शैली में अंतर ही कर चुके हैं। सन् 1918 में जब गांधी जी हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के अध्यक्ष हुए तो उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने पर बल दिया। उनके प्रयास से ही हिंदी के प्रचार-प्रसार में बहुत बल आया। सन् 1918 में ही दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना मद्रास में की गई। सन् 1920 में गांधी जी ने मद्रास प्रेसीडेंसी की जनता से अपील की कि वह लोगों द्वारा हिंदी सीखने की राष्ट्रीय आवश्यकता को स्वीकार कर लें।

गांधी जी गुजरात के संत प्राणनाथ से प्रभावित थे जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी में ही उद्घोष कर दिया था :

> "सबको बोधगम्य जानकर हिंदी (हिंदुस्तानी) भाषा सबसे बड़ी है, सबसे अच्छी है, यही सब में व्याप्त है। यही सबको आंतरिक रूप में और बाह्य रूप से मिलाने वाली भाषा है।"

आधुनिक काल में एक ओर ईसाई मिशनरी अपने विचार हिंदी में रख रहे थे तो दूसरी ओर केशवचंद्र सेन और स्वामी दयानंद जैसे सुधारकों ने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी को अपनाया। कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस शारदाचरण चित्र द्वारा स्थापित 'एक लिपि विस्तार परिषद्' (सन् 1905) से भारी लिपि को बल मिला। 'देवनागर' पत्र भी उसके लिए प्रकाशित हुआ। देवनागरी लिपि के अपनाने से जहाँ भाषिक सहयोग बढ़ा वहीं भावात्मक एकता स्थापित हुई। जस्टिस सेन ने अपनी बात को बड़े विस्तार से समझाया :

> "सारे भारतवर्ष में एक ही भाषा का व्यवहार करना ही एक मात्र उपाय है। अभी कितनी ही भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं। इसी हिंदी को भारतवर्ष की एक मात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाए तो सहज ही में यह एकता सम्पन्न हो सकती है।"

बंगाल की नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले सुभाषचंद्र बोस (बाद में नेताजी के नाम से विख्यात) के स्पष्ट विचार थे कि अगर आज हिंदी मान ली गई है तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण है। वह किसी प्रांत विशेष की भाषा नहीं बल्कि सारे देश की भाषा हो सकती है। 'वंदेमातरम्' के रचयिता बंकिमचंद्र ने हिंदी भाषा पर बल दिया। इस गान को कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर ने राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में प्रस्तुत किया। उन्होंने भी मुक्तकंठ से कहा कि :

> "हमें उस भाषा को राष्ट्रभाषा ग्रहण करना चाहिए जो देश के सबसे बड़े भूभाग में बोली जाती है और जिसे स्वीकार करने के लिए महात्माजी ने हमसे आग्रह किया अर्थात् हिंदी।"

आगे चलकर राष्ट्रभाषा हिंदी और स्वतंत्रता की लड़ाई पर्याय बन गए और नेतृत्व प्रदान किया राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने। इस अभियान में देश के सभी प्रदेशों के अग्रणी राजनेताओं ने योगदान किया जिनमें से कुछ नाम चिरस्मरणीय बने रहेंगे :

> बाल गंगाधार तिलक, रवींद्रनाथ ठाकुर, विनोबा भावे, काकाकालेकर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, अनंत शयनम् आयंगार, क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय, सुनीति कुमार चटर्जी, रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर, एनी बेसेंट, सुभाषचंद्र बोस, जवाहरलाल नेहरु, भीमराव अम्बेडकर, सरदार वल्लभ भाई पटेल, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानंद आदि।

देश के सभी भागों में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई जिनमें मद्रास में स्थापित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (अब इसके क्षेत्रीय स्नातकोत्तर केंद्र – हैदराबाद, धारवाड़, एरणाकुलम), वर्धा में स्थापित सभा, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुक्न्तपुरम्, हैदराबाद की आंध्र हिंदी प्रचार सभा, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा

समिति, बैंगलूर, कर्नाटक प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगाम आदि मुख्य हैं। इसी प्रकार सुदूर उत्तर-पूर्व में हिंदी का व्यापक रूप से प्रसार हुआ।

हिंदीतर भाषा-भाषियों के राष्ट्रीय पुरस्कार समारोह में महामहिम पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने अपने बाईस मार्च, 1993 के अभिभाषण में राष्ट्रभाषा को महासागर माना :

> 'मैं विभिन्न भाषाओं को अपने देश की भावना और चेतना की प्रतिनिधि धारा मानता हूँ जो हमारे देश की मूल विचारधारा और राष्ट्रभाषा के महासागर में आकर गिरती हैं और उसे समुद्र बनाती हैं। वे लोग जो मातृभाषा के अतिरिक्त देश की अन्य भाषाओं के लिए काम कर रहे हैं उन्हें मैं रोशनी के चमकीले कण मानता हूँ जो हमारे मन में आशा का प्रकाश पैदा करते हैं जिससे भारत का भविष्य आलोकित होता है।

राजभाषा

राजभाषा का सामान्य अर्थ है – राजकाज की भाषा, राजकीय कार्य चलाने की भाषा। भाषा का वह रूप 'राजभाषा' है जिसके द्वारा रजाकीय चलाने में सुविधा हो। 'राजभाषा' शब्द प्राचीन नहीं है, यह तो 'संविधान' में राजकाज चलाने की भाषा संबंधी अनुच्छेद-343 से 351 तथा अष्टम् अनुसूची के जुड़ जाने से 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा जो वस्तुतः official language ऑफीशियल लैंग्वेज़ शब्द का अनुवाद मात्र है अन्यथा इससे पूर्व 'राष्ट्रभाषा' शब्द का प्रयोग किया जाता था। काफी समय राजनेताओं को भी यही भ्रम रहा कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा पद पर आसीन हो गई है। लेकिन अब स्पष्टतः 'राष्टभाषा' तथा 'राष्ट्रभाषा' में भेद किया जाता है। 'राजभाषा' प्रशासनिक प्रयोजनों तथा आर्थिक विकास के लिए काम में आती है जबकि 'राष्ट्रभाषा' सामाजिक अस्मिता तथा राष्ट्रीय संप्रभुता को द्योतित करती है।

राजभाषा के रूप में हिंदी अंग्रेज़ी की भाँति प्रशासन के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए प्रयुक्त की जाती है जबकि राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग में आने वाली हिंदी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा बनी हुई है।

भारत के संविधान में राजभाषा संबंधी अनुच्छेद मुख्यतः 343 से 351 हैं जिनके पहले अनुच्छेद 120 में भी संसद की भाषा का उल्लेख है। इन अनुच्छेदों में से 343 वें अनुच्छेद में राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हिंदी भाषा का उल्लेख इस प्रकार है :

343 (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) में पंद्रह वर्ष तक अंग्रेज़ी के चलते रहने का प्रावधान है।

(3) में पंद्रह वर्ष के बाद भी अंग्रेज़ी भाषा के चलते रहने की व्यवस्था है।

अनुच्छेद 344 की विभिन्न धारा-उपधारा व पैरा में राजभाषा 345 से 347 तक 'प्रादेशिक भाषा' का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 348 से 349 में उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय की भाषा का विधान है। अनुच्छेद 350 में विशेष आभ्यावेदन की भाषा का प्रावधान है।

अनुच्छेद 351 में 'विशेष निदेश' दिया गया है जिसमें यह बताया गया है कि 'हिंदी भाषा का विकास' किस प्रकार हो :

> 'संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का

माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप शैली और पदों को आत्मगत करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।"

अष्टम अनुसूची

(अनुच्छेद 344 (1) और 351)

1. असमिया, 2. उड़िया, 3. उर्दू, 4. कन्नड़, 5 कश्मीरी, 6. गुजराती, 7. तमिल, 8. तेलुगु, 9. पंजाबी, 10. बंगला, 11. मराठी, 12. मलयालम, 13. संस्कृत, 14. सिंधी, 15. हिंदी, 16. नेपाली, 17. कोंकणी, 18. मणिपुरी।

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद भारत के संविधान में राजभाषा संबंधित अनुच्छेद अचानक जोड़ दिए गए, ऐसी बात नहीं। मुगलों के शासनकाल में भी देशी रियासतों में से अनेक में प्रशासन की भाषा हिंदी थी और अंग्रेज़ी शासन से पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के समय ही इंगलैंड से आने वाले अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए सन् 1800 ई. में कलकत्ता में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। कंपनी प्रशासन सरकार की कामकाज की भाषा के प्रति सचेत रही जिसके फलस्वरूप हिंदी पढ़ाने तथा उसकी पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए श्री लल्लू जी लाल और सदल मिश्र की नियुक्ति हुई। इस पठन की सुविधा प्राप्त होते ही यह घोषणा तत्काल कर दी गई कि "सन् 1801 के प्रारंभ से ऐसा कोई भी सिविल सर्वेंट किसी विश्वास तथा उत्तरदायित्व के पद पर नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक यह निश्चय न कर लिया जाए कि उसे गवर्नर जनरल द्वारा बनाए गए कानूनों, नियमों तथा उन भाषाओं का ज्ञान है जो पद से संबंधित कार्यकलाप के लिए आवश्यक।" जॉन गिलक्राइस्ट के निर्देशन में पर्याप्त सामग्री हिंदी पढ़ाने के लिए तैयार हुई। अभी भी समय-समय पर हिंदी पढ़ाने के आदेश निकाले गए जिनमें से इंडिया आफ़िस, लंदन का दिनांक 12.8.1881 का आदेश महत्वपूर्ण है जिसमें उत्तर-पश्चिमी प्रांत अवध पंजाब जाने वाले अधिकारियों के लिए 'हिंदी' की परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य कर दिया गया, अन्य राज्यों को जाने वाले अधिकारियों को प्रोत्साहन के लिए इनाम की व्यवस्था की गई। आगे चलकर इसी आदेश का स्पष्टीकरण करते हुए 26 जनवरी 1882 को सिविल सर्विस कमीशन के नाम भेजे गए पत्र में पुनः जोर दिया गया कि 'हिंदुस्तानी' के लिए विशेष पुरस्कार की व्यवस्था की जाए। सन् 1901 की जनगणना की रिपोर्ट के प्रथम खंड में हिंदी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया कि "हिंदी के पास ऐसा शब्दाकोश और अभिव्यक्ति की सामर्थ्य है जो अंग्रेज़ी से किसी प्रकार कम नहीं है।"

स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने के लिए जो कांफ्रेंस हुई और इस अवसर पर (सन् 1928 ई. में) पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में तैयार 'नेहरू रिपोर्ट' प्रस्तुत की गई जिसमें हिंदुस्तानी को सर्वमान्य भाषा के रूप में घोषित किया गया। इस रिपोर्ट को तैयार करने में दो युवकों पं. जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस ने विशेष परिश्रम किया।

भारत के संविधान में जो राजभाषा संबंधी अनुच्छेद 343 से 351 है, उन्हें मुंशी-आयंगर फार्मूले के अनुसार स्वीकार किया गया। उल्लेखनीय है कि ये दोनों महानुभाव अहिंदी क्षेत्र से संबंधित थे।

वर्तमान में राजभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति इस प्रकार है :

केंद्र में संघ के प्रयोजनों के लिए छब्बीस जनवरी 1965 से मुख्य भाषा हिंदी और सह भाषा अंग्रेज़ी रहेगी :

क. राज्यों (हिंदी भाषाभाषी राज्यों में जहाँ राजभाषा हिंदी है) – हिंदी

ख. राज्यों (वे राज्य जहाँ हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में माना है)– मात्र हिंदी (पंजाब-गुजरात-महाराष्ट्र)

ग. राज्यों (वे राज्य जहाँ राजभाषा हिंदी से इतर कोई भाषा है) – अंग्रेज़ी
शेष सभी राज्य

समस्त हिंदी भाषा-भाषी राज्यों में राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता है साथ ही अंडमान निकोबार द्वीपसमूह में भी।

7.5.2 संपर्क भाषा

भारत जैसे बहुभाषी देश में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता ही इसको जोड़े हुए है। इस प्रक्रिया में संचार-प्रक्रिया सक्रिय है। यदि बोधगम्यता को भाषा-बोली के निर्धारण का आधार माना जाए तो संपूर्ण उत्तर भारत की संपर्क भाषा हिंदी ही होगी। जब बंगला भाषी किसी पंजाबी भाषी से बात करना चाहेगा अथवा पंजाबी भाषा-भाषी असमिया भाषी से वार्तालाप करना चाहेगा तो 'हिंदी' संपर्क भाषा के रूप में होगी वह चाहे कितनी ही टूटी-फूटी अथवा व्याकरण की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण हो। सत्रहवीं शताब्दी में '**कुलजम सरूप**' में महामति प्राणनाथ ने स्वीकार किया था कि **'यही (हिंदी-हिंदुस्तानी)** सबको आंतरिक रूप में और बाह्य रूप से मिलाने वाली (संपर्क) भाषा है।'

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु ने भी माना था कि "एक राज्य से दूसरे राज्य को पत्र-व्यवहार अथवा बोलचाल के लिए एक ही भाषा अपेक्षित है – वह है हिंदी भाषा। हिंदी भाषा ही उपयुक्त और उचित संपर्क भाषा बन सकती है।"

न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर शुभकामनाएँ भेजते हुए पं. मदन मोहन मालवीय को लिखा था :

> 'हिंदी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ **साधु हिंदी** में वार्तालाप कर सकूँ।'

भारत के प्रत्येक राज्य में भाषा-व्यवहार की व्यवस्था है। कोई प्रदेश एक भाषी है, कोई द्विभाषी और कोई त्रिभाषी। किसी भी देश में एक भाषा संपर्क भाषा के रूप में कार्य करती है। यही स्थिति आज भारत में 'हिंदी भाषा' निभाती है। यही एक ऐसी सशक्त भाषा है जो मात्र समृद्ध तथा संपन्न होने के कारण नहीं वरन् ऐतिहासिकता, भौगोलिक एकता के कारण जनभाषा के रूप में आपसी संपर्क-संसर्ग की भाषा है। भारत की अन्य भाषाओं की ओर इसका उदार, व्यापक तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण बना हुआ है।

संविधान के अनुच्छेद 346 में 'एक राज्य और दूसरे के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए भाषा की व्यवस्था है।' यही **संपर्क भाषा** के प्रयोग की स्थिति बनती है। **राजभाषा नियम 1976** के अनुसार संपर्क भषा की स्थिति इस प्रकार है :

	राज्य	संपर्क भाषा
क.	राज्य (हिंदी भाषा-भाषी राज्य)	हिंदी
ख.	राज्य (पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, चंडीगढ़ जहाँ द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी मान्य है)।	हिंदी
ग.	राज्य (शेष सभी राज्य)	

टिप्पणी : हिंदी में पत्र भेजने पर अंग्रेज़ी अनुवाद भेजना अनिवार्य है।

संपर्क भाषा की आवश्यकता क्यों

क. परस्पर संपर्क बनाए रखने के लिए

ख. 1. संघ से संपर्क बनाए रखने के लिए

2. संघ व राज्य – कोई अन्य भाषा-भाषी

दो भिन्न भाषा-भाषियों के मध्य	**संपर्क भाषा**
पंजाब (पंजाबी) और हिंदी भाषी राज्य	संपर्क भाषा–हिंदी
पंजाब (पंजाबी) और संघ	हिंदी
पंजाब (पंजाबी) और बंगाल	अंग्रेज़ी/हिंदी
अरुणाचल प्रदेश की दो भिन्न आदिवासियों के मध्य	हिंदी
अंडमान-निकोबार की दो भिन्न आदिवासियों के मध्य	हिंदी
अंडमान-निकोबार व संघ के मध्य	हिंदी
हिंदी प्रदेशों की दूरस्थ दो उपभाषाओं के मध्य	हिंदी
मारवाड़ी-भोजपुरी	हिंदी
मारवाड़ी-निमाड़ी	हिंदी
तमिलनाडु–संघ के मध्य	अंग्रेज़ी

'संपर्क भाषा' के दृष्टि से हिंदी भाषा का प्रयोग विविध क्षेत्रों में किया जाता है।

विविध आयाम

	भाषा-व्यवहार	व्यवहार-कर्त्ता	भाषा-हिंदी
1.	जनसंचार	शिक्षित/अर्धशिक्षित	जनसंचार भाषा
2.	प्रशासन	शिक्षित/अर्धशिक्षित	राजभाषा हिंदी
		कार्मिक	
		जन साधारण	
3.	आर्थिक गतिविधि	विभिन्न व्यवसाय/कौशल	प्रयोजनमूलक हिंदी
4.	अंतर्वैयक्तिक संप्रेषण	शिक्षित/अर्धशिक्षित	जनभाषा हिंदी
5.	शिक्षा का माध्यम	शिक्षित वर्ग	हिंदी
			तकनीकी अंशत:
			शास्त्रीय हिंदी
6.	सामाजिक संस्कृति	शिक्षित वर्ग	सांस्कृतिक भाषा

महामहिम (स्व.) पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह मानते थे कि 'हिंदी देश की ऐसी एकमात्र भाषा है जो देश के अधिकतर हिस्सों में बोली और समझी जाती है।'

यही भाषा देश को जोड़ने में कड़ी का काम कर सकती है। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान, राजनयिक डॉ. स्मेकल मानते हैं कि :

'भारतवासियों से बातें करते हुए हिंदी निरंतर मेरे साथ रही, संपर्क भाषा के रूप में।'

7.6.3 हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्व

हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय महत्व के कारण विभिन्न देशों के विद्वान, मनीषी, भाषाविद् हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में रुचि लेते रहे। हिंदी का प्रथम व्याकरण भी कई शताब्दी पूर्व उनमें लिया गया जिसका तत्काल लैटिन में अनुवाद हुआ और बाद में अंग्रेज़ी में। अब तो हिंदी विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

प्रवासी भारतीयों के कारण हिंदी पहले से फीजी, मॉरीशस, सूरीनाम और ट्रिनीडाड में प्रतिष्ठित थी। अब तक जो पाँच विश्व हिंदी सम्मेलन हुए हैं उनमें से तीन (दो मॉरीशस में

और एक ट्रिनीडाड) विदेशों में संपन्न हुए हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन को नागपुर में उद्घाटित करते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि "हमारा देश बहुभाषी देश है। हमारे यहाँ अनेकता में एकता है। यह एक सर्वभाषा भारती है लेकिन मुझे आशा है कि भारत के लोग अधिक से अधिक हिंदी सीखेंगे।" आज तो हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बल्कि विश्व में इसका स्थान तीसरा है। विश्व के शताधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन किया जाता है।

सन् 1947 में यूनेस्को की स्थापना के ठीक बाद महासभा के दूसरे सत्र में मैक्सिको नगर में भारत के प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को सर्वसम्मति से मान लिया गया था। तब से हिंदी यूनेस्को की अन्य स्वीकृत भाषाओं के साथ प्रयोग की जा रही है। यूनेस्को के संविधान में संशोधन तथा अन्य निर्णयों का हिंदी में अनुवाद किया जाता है। विशेष प्रतिनिधि की प्रार्थना पर किसी भी पत्र अथवा भाषण का अनुवाद भी यूनेस्को की शासकीय भाषाओं में किया जाता है। सन् 1967 ई. से 'यूनेस्को कूरियर' पत्रिका का हिंदी संस्करण भी प्रकाशित किया जाता है जिसमें अनेक सूचनाएँ/आलेख होते हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर यूनेस्को के प्रतिनिधि श्री अशर डिलियॉन ने शुभकामनाएँ भेंट करते हुए कहा:

> "सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में हिंदी का स्थान विश्व में तीसरा है। भारत में राष्ट्रीय भाषा की दृष्टि से हिंदी का स्थान सर्वोपरि है और दस से अधिक देशों में विद्यमान विभिन्न समुदाय भी हिंदी का प्रयोग करते हैं। इसमें साहित्य, ज्ञान, दर्शन, कविता, कला एवं विज्ञान का बहुत बड़ा भंडार है। निश्चित ही भविष्य में हिंदी भारत में व्यापक जनभाषा बन सकेगी। विश्वभाषा के रूप में भी ज्ञान एवं संस्कृति के आदान-प्रदान की दृष्टि से इसका विकास हो सकेगा।"

इस प्रकार हिंदी अंतर्राष्ट्रीय जगत् में प्रतिष्ठित हुई और शीघ्र ही उसको संयुक्त राष्ट्र संघ (यू एन ओ) की भाषा के रूप में मान्यता मिलेगी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत के दो पूर्व प्रधानमंत्रियों श्री अटल बिहारी बाजपेयी तथा श्री पी.वी. नरसिंह राव महासभा की बैठक में क्रमशः 4 अक्टूबर, 1977 तथा 4 अक्टूबर, 1988 को हिंदी में अपना अभिभाषण विदेश मंत्री के रूप में दे चुके हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर राजभाषा हिंदी को प्रतिष्ठित करने की दिशा में भारत सरकार की यह पहल प्रशंसनीय रही है। सांस्कृतिक संबंध परिषद् नई दिल्ली के तत्वधान में विदेशों के लिए **गगनांचल** पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अतिरिक्त अन्य अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में अभिभाषण हुए हैं जिनमें उल्लेखनीय कुछ इस प्रकार हैं :

पूर्व प्रधानमंत्री श्री चंद्रशेखर	:	दक्षेस सम्मेलन में पूर्व
मानव संसाधन विकासमंत्री श्री अर्जुन सिंह	:	यूनेस्को की 26वीं महासभा
सांसद व केंद्रीयमंत्री श्री रामविलास पासवान	:	राष्ट्रमंडलीय संसदीय सम्मेलन
सांसद (स्व.) श्री शंकर दयाल सिंह	:	वही (37 वाँ)

नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर काका कालेलकर और डॉ. कर्ण सिंह ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता दिलाने के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए। श्री दयानंद लाल वसंत राय (मॉरिशस) ने अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से हिंदी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए यह प्रस्ताव अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया :

> "भारत के अतिरिक्त हिंदी नेपाल में भी बोली-समझी जाती है। मॉरिशस, ट्रिनिडाड, फीजी, सूरीनाम की हिंदी भाषी जनता के अतिरिक्त विश्व के सभी देशों में बसे भारतीय अधिकांशतः हिंदी बोलते हैं। यह बहुत बड़ी संख्या है। फिर भी, संयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी संस्थाओं में हिंदी का प्रयोग न होना हमारी निर्बलता का सूचक है - भारत की निर्बलता का सूचक है। इसके लिए आवाज़ उठाने की आवश्यकता है। आवाज ही नहीं संघर्ष करने की आवश्यकता है और यह पहल

भारत को करनी होगी। हम सब चाहते हैं कि हिंदी की संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान मिले।"

उक्त प्रस्ताव का समर्थन डॉ. चेलीशेव (रूस), डॉ. लोडार लुर्त्स (जर्मनी), प्रो. ओदोलन स्मेकल (चेकोस्लोवाकिया), श्री शंभुनाथ (त्रिनिडाड) आदि ने किया। गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. रामगुलाम (मॉरीशस) ने प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। इसी प्रकार के प्रस्ताव द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम सममेलनों में भी पारित होते रहे। उक्त सभी सम्मेलनों में अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ भी आयोजित हुईं।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने दक्षिण-पूर्व एशिया में जब आजाद हिंद फौज की और उसकी सरकार की स्थापना की थी जिसका अधिकांश कार्य हिंदी में होता था।

उत्तरी अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका में उन विश्वविद्यालयों की संख्या सर्वाधिक है जहाँ विभिन्न पाठ्यक्रमों में हिंदी पढ़ाई जाती है। फीजी, सूरीनाम, मॉरीशस तथा मॉरीशस के अतिरिक्त यूरोप में हालैंड ऐसा देश है जहाँ भारतवंशी लाखों की संख्या में है जो हिंदी के माध्यम से भारतवर्ष से जुड़े रहना चाहते हैं।

कई देशों में आकाशवाणी द्वारा हिंदी के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं जैसे सूरीनाम के रेडियो स्टेशन, इंग्लैंड में बी.बी.सी. की हिंदी-सेवा, जर्मनी की वायस ऑफ़ जर्मनी आदि।

विश्व के शताधिक विश्वविद्यालयों तथा शैक्षणिक केंद्रों में हिंदी को स्थान प्राप्त है।

अनेक देशों से हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं जिनमें से ज्योति (त्रिनीडाड), ज्वालामुखी (जापान), विश्व विवेक (सं.रा. अमेरिका), विश्व (प्रवासी) भारती (कनाडा), मॉरिशस मित्र, आर्य पत्रिका, आर्यवीर, नवजीवन (मॉरीशस), शांतिदूत, जागृति, अनुराग, जय फीजी, फीजी संदेश (फ़ीजी), सरस्वती, भारतीदय (सूरीनाम), आर्य-ज्योति (गयाना), ज्योति (त्रिनीडाड), हिंदी (द. अफ्रीका) ब्रह्मभूमि (बर्मा-म्यांमार), साहित्यलोक (नेपाल), अमरदीप, प्रवासिनी (इंग्लैंड) आदि।

भारत से जहाँ श्री लल्लनप्रसाद व्यास के संपादन में 'विश्वहिंदी' पत्रिका प्रकाशित होती है वहीं विश्व में हिंदी का लेखा-जोखा 'विश्व में हिंदी' (सं. हरिबाबू कंसल) प्रकाशित हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिंदी की स्थिति उज्ज्वल भविष्य का संकेत देती है। आज इस क्षेत्र में शोधकार्य करने वाले विद्वानों में अग्रणी हैं - डॉ. बरान्निकेव, डॉ. चैलिशेव, डॉ. मैकग्रेगर, डॉ. स्नेल, डॉ. लीनर लुत्से, डॉ. बृस्की, डॉ. स्मेकल, डॉ. तनाका आदि हैं।

7.6 सारांश

हिंदी भाषा और उसके विस्तृत क्षेत्र का विवरण दिया गया है। भारत के विविध राज्यों में हिंदी की क्या स्थिति है, जानने-समझने के बाद विस्तार से हिंदी भाषा की विविध बोलियों/उपभाषाओं की संक्षिप्त जानकारी दी गई है। हिंदी भाषा को उपभागों में विभजित कर पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी से तात्पर्य स्पष्ट किया गया है। यह भी बताया गया है कि इन दोनों उपवर्गों में हिंदी की कौन-कौन सी बोलियाँ आती हैं। हिंदी क्षेत्र भारतवर्ष तथा विश्व के परिप्रेक्ष्य में हिंदी की बोलियों/उपभाषाओं को परिगणित किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन समस्त बोलियों का अंतः पारस्परिक संबंध क्या है। कौन-सी बोली किस एक अथवा दो बोलियों से संबंध रखती है, इस तथ्य को रेखाचित्र

द्वारा स्पष्ट किया गया है। हिंदी की बोलियों/उपभाषाओं का विवरण कुछ सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्रियों डॉ. धीरेंद्र वर्मा, डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. सुमन, डॉ. विमलेश कांति वर्मा – द्वारा दिए गए विवरण के परिप्रेक्ष्य में दिया गया है। हिंदी के विविध शैलीगत रूपों में से उर्दू तथा हिंदुस्तानी से अंतर स्पष्ट किया गया है। उर्दू हिंदी से जुड़े होते हुए भी किस कारण पृथक मानी जाने लगी है। हिंदी के विविध संदर्भों के अंतर्गत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विभाजन किया गया है। 'राष्ट्रीय' के अंतर्गत हिंदी के विविध पक्षों – राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा – पर संक्षेप में विवरण देते हुए भी उनके महत्वपूर्ण बिंदुओं को उभारा गया है जिसके अंत में अंतर्राष्ट्रीय पक्ष पर वर्तमान संदर्भ में विश्व हिंदी सम्मेलनों के परिप्रेक्ष्य में विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

7.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी के अंतःसंबंध की व्याख्या कीजिए।

(2) हिंदी भाषा के राष्ट्रीय संदर्भ की चर्चा कीजिए।

(3) हिंदी भाषा क्षेत्र से क्या तात्पर्य है?

2. टिप्पणियाँ

(1) संपर्क भाषा हिंदी

(2) हिंदी की बोलियाँ

(3) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी

खंड के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

1. उदयनारायण तिवारी : *भाषाशास्त्र की रूपरेखा*, भारती भंडार, इलाहाबाद।
2. भोलानाथ तिवारी (1961) : *भाषाविज्ञान*, किताब महल, इलाहाबाद।
3. भोलानाथ तिवारी(1973) : *हिंदी भाषा*, किताब महल, इलाहाबाद।
4. भोलानाथ तिवारी (सं.) (1972) : *भारतीय भाषाविज्ञान की भूमिका*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. जयकुमार जलज (2001) : *ऐतिहासिक भाषाविज्ञान*, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली।
6. कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय (1977) : *आधुनिक भाषाविज्ञान*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
7. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव एवं रमानाथ सहाय (1976) : *हिंदी का सामाजिक संदर्भ*, केंद्रीय हिंदी स्थान, आगरा।
8. धीरेंद्र वर्मा (1961) : *हिंदी भाषा का इतिहास*, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
9. Block, Bernard & G.L., Trager (1942) : *Outline of Linguistic Analysis*, Linguistic Society of America.
10. Neil & Smith
11. Bloomfield, Leonard & Motilal Banarasidas (1963) : *Language*, Delhi.
12. Trudgill, Peter (1968) : *Sociolinguistics - An Introduction*, Penguin.
13. Katre, S.M. (1965) : *Lexicography*, Annamalai University.